ग्रामीण जैविक संसाधन - पशुपालन की भूमिका

राजेन्द्र श्योकन्द, रमेश कुमार, ओम प्रकाश महला, सुनील कुमार,
रमेश चन्द्र वर्मा, बलबीर श्योकन्द एवं राजेन्द्र सिंह

विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

उद्धरण

राजेन्द्र श्योकन्द, रमेश कुमार, ओम प्रकाश महला, सुनील कुमार, रमेश चन्द्र वर्मा, बलबीर श्योकन्द एवं राजेन्द्र सिंह. 2007. ग्रामीण जैविक संसाधन - पशुपालन की भूमिका. बुलेटिन संख्या (19), चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार-125 004.

आवरण पृष्ठ

अगला पृष्ठ : मुर्रा भैंस

पिछला पृष्ठ : गाय

लेखक :

राजेन्द्र श्योकन्द, समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, कैथल

रमेश कुमार, जिला विस्तार विशेषज्ञ (पशु विज्ञान), कृषि विज्ञान केन्द्र, जीन्द

ओम प्रकाश महला, समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, यमुनानगर

सुनील कुमार, जिला विस्तार विशेषज्ञ (कृषि वानिकी), कृषि विज्ञान केन्द्र, जींद

रमेश चन्द्र वर्मा, जिला विस्तार विशेषज्ञ (कृषि वानिकी), कृषि विज्ञान केन्द्र, कैथल

बलबीर श्योकन्द, समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, सिरसा

राजेन्द्र सिंह, वरिष्ठ जिला विस्तार विशेषज्ञ (पशु विज्ञान), कृषि विज्ञान केन्द्र, रोहतक

इस पुस्तक के प्रकाशन हेतु भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मन्त्रालय के जैव प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा प्रदत वित्तीय सहायता अधीन "हिसार तथा सोनीपत जिले के गांवों में डी.बी.टी. (जै.प्रौ.वि.) ग्रामीण जैव-संसाधन संकुल" की विशिष्ठ परियोजना के अन्तर्गत आर्थिक सहायता प्रदान की है।

इस प्रकाशन में प्रस्तुत की गई सामग्री और लिए गए पदनाम किसी भी रूप में चौधरी चरण सिंह हरियाणा षि विश्वविद्यालय, हिसार के विचारों की अभिव्यक्ति नहीं है तथा किसी भी देश, क्षेत्र, शहर और इलाके या उसके अधि ाकारियों या सीमाओं और सीमान्त प्रदेशों की सीमांकन की कानूनी स्थिति से संबंधित नहीं है। जहां कहीं भी ट्रेड नामों का इस्तेमाल किया गया है, उसे किसी की पुष्टि या किसी के प्रति भेदभाव नहीं समझा जाना चाहिए।

कुलपति
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय
हिसार

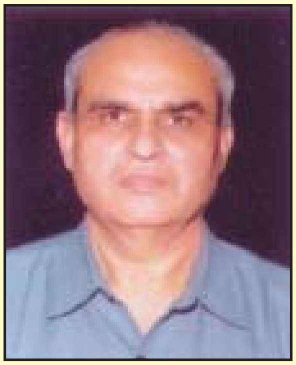

प्राक्कथन

पिछले 10 वर्षों से कृषि क्षेत्र में फसल उत्पादन पर बढ़ती हुई लागत तथा स्थिर उत्पादन से पशुपालन व्यवसाय का महत्व बढ़ गया है। गेहूं-धान फसल चक्र से दुग्ध उत्पादन पर जो असर हुआ है वह भी एक चिंतनीय विषय है। इस क्षेत्र में वैज्ञानिक सोच और आधुनिक तकनीक का इस्तेमाल समय की मांग है। कृषि विश्वविद्यालयों तथा शोध संस्थानों द्वारा विकसित की गयी नई तकनीक को किसानों तक पहुंचाने के लिए पाठ्यसामग्री की आवश्यकता है। उत्तरी हरियाणा में चारे के अधीन घटता हुआ क्षेत्रफल भी दूध उत्पादन में वृद्धि के लिए एक चुनौती है।

देश के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र की भागीदारी लगातार घट रही है। दूसरी तरफ कृषि सकल घरेलू उत्पादन में पशु उत्पादों की भागीदारी बढ़ रही है। इस दृष्टि से लघु तथा सीमांत किसानों के लिए पशुपालन आय उपार्जन का मुख्य स्रोत्र बन रहा है। हरियाणा प्रदेश में कृषि यांत्रिकीकरण की वजह से (दूध उत्पादन मे) देसी गाय की भूमिका कम होती जा रही है। इसके साथ भैंस पालन में किसानों की रूचि बढ़ रही है। परन्तु इस प्रदेश में प्रति पशु दूध उत्पादन का स्तर विकसित देशों की अपेक्षा काफी कम है। इस दिशा में कारगर कदम उठाने की आवश्यकता है। सुदृढ़ प्रजनन नीति, सन्तुलित आहार तथा उत्तम प्रबन्धन द्वारा भारतीय नस्लों का दूध उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। दुनिया के 2 प्रतिशत क्षेत्रफल पर संसार के कुल पशुओं का 18 प्रतिशत भारतवर्ष में पाले जाते हैं। औद्योगीकरण, शहरीकरण व कृषि क्षेत्र के यांत्रिकीकरण के कारण पशुपालन व्यवसाय प्रभावित हो रहा है। अतः पशुपालन व्यवसाय को शहरों की अपेक्षा देहात में बढ़ावा देने की जरूरत है। बढ़ती जनसंख्या के दबाव से दूध व दूध उत्पादों की मांग दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन के मानकों के अनुरूप (250 ग्राम दूध प्रति व्यक्ति प्रतिदिन) दूध उपलब्धता बढ़ाने के लिए इस क्षेत्र विशेष को प्राथमिकता देना जरूरी है। क्योंकि हमारे देश में प्रति व्यक्ति दूध उपलब्धता 230 ग्राम प्रतिदिन है। अतः दूध उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए इस दिशा में सकारात्मक सोच अपनानी चाहिए।

किसानों को पशुपालन विषय पर आधुनिक जानकारी देने के लिए हमारे विस्तार विषय विशेषज्ञों ने यह पुस्तक सरल हिन्दी भाषा में लिखी है जो इस दिशा में सराहनीय कदम है। इसके लिए लेखकगण बधाई के पात्र हैं।

(जे. सी. कत्याल)

प्रस्तावना

पशुओं के साथ हम सदियों से रहते आये है उनकी पूजा व प्रशंसा करते हैं, उनसे प्यार करते हैं, उनकी देखभाल करते हैं तथा उन पर निर्भर रहते हैं। पशु व उनके उत्पाद हमारी दिनचर्या व भोजन का महत्वपूर्ण अंग हैं। क्योंकि वे हमारे लिए बहुत उपयोगी हैं, इसलिए हम उनके जीवन व पालन के बारे में वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त करके अपने जीवन स्तर को ऊपर उठा सकते हैं। पशु दूध, माँस, यातायात, कृषि कार्य, चमड़ा, ऊन, मनोरंजन व राष्ट्र रक्षा के लिए पाले जाते हैं। पशुओं के बारे में हम जाने या न जाने लेकिन वे सदियों से मानव संस्कृति का अभिन्न अंग रहे हैं। लगभग 2 मिलियन साल पूर्व से पशुओं का शिकार करके भोजन के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है। सर्वप्रथम पशुओं को 6000-14000 वर्ष पहले पाला गया था। सबसे पहले पशुओं में बकरी, भेड़, गाय, भैंस, कुता, घोड़ा इत्यादि पाले गये। मानव सभ्यता के शुरू में इन पशुओं को मांस, हड्डी, खाल व आत्म-रक्षा के लिए पाला जाता था। उसके बाद पशुओं का प्रयोग कृषि कार्य, दूध, शक्ति, खाल, राष्ट्र-रक्षा, खेल व शौक के लिए पाला जाने लगा। आदि मानव से किसान बनने की जरूरतों से ही समाज में सांस्कृतिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। वास्तव में पशुपालन ही मानव सभ्यता के उदय का प्रथम कदम था। पशुओं के मनुष्य के साथ रहने से, उनके व्यवहार, प्रबन्धन व उनसे अधिकाधिक उत्पादन लेने की लालसा के कारण ही पशुपालन विज्ञान का अभ्युदय हुआ।

दुनिया के 2 प्रतिशत क्षेत्रफल पर लगभग 18 प्रतिशत पशु भारतवर्ष में पाले जाते हैं। संसार की कुल भैंसों का लगभग 58 प्रतिशत तथा गाय व बकरियों की लगभग 15 प्रतिशत संख्या भारत में पाई जाती है। देश के कुल दूध-उत्पादन का 98 प्रतिशत भाग भैंसों व गायों से प्राप्त होता है। भारत वर्ष में दुधारू पशुओं की दूध-उत्पादन क्षमता विकसित देशों की अपेक्षा बहुत कम है। विषम जलवायु, घटिया पशु आनुवंशिकी, छोटी जोत, वैज्ञानिक जानकारी का अभाव, क्षेत्रीय व मौसमी असन्तुलन, असंगठित बाजार, अलाभदायक पशुओं को रखना, उपयुक्त सांख्यिकी व सुदृढ़ पशुपालन नीति का अभाव, पशुपालकों की कमजोर आर्थिक स्थिति तथा धार्मिक आस्थायें कमतर पशु उत्पादन के मुख्य कारण रहे हैं।

आजादी के बाद कृषि विकास के लिए की गई गतिविधियों का भी पशुपालन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इसमें गेहूं-धान फसल चक्र ने विशेषतया उत्तरी भारत के प्रमुख धान उत्पादन मैदानी इलाकों में मुख्य भूमिका अदा की है। इस फसल चक्र ने न केवल पशुओं के लिए हरे चारे की उपलब्धता कम की है, बल्कि पशुओं की प्रजनन प्रणाली को ही बदल कर रख दिया है। इस फसल चक्र में बैलों का योगदान लगभग शून्य होने से उनका स्थान झोटों ने ले लिया है जिससे गांवों में प्रजनन के लिए पाले जाने वाले उच्च गुणवता के पंचायती झोटे लगभग नगण्य हो गये हैं। परिणाम स्वरूप भैंसों की उत्पादन क्षमता काफी कम हो गई। उत्तर भारत के मैदानी इलाकों विशेषकर मुर्रा उत्पादन क्षेत्र से उच्च गुणवता वाले दुधारू पशुओं का दक्षिण भारत के बड़े शहरों में लगातार निर्यात भी कम दूध उत्पादन का एक प्रमुख कारण रहा है। सरकार द्वारा बनाई गई कृत्रिम गर्भाधान की नीति से भी वांछित परिणाम प्राप्त नही हो रहे हैं। उपर्युक्त बातों को मद्देनजर रखते हुए कृषि विशेषज्ञों, प्रशासकों तथा नीति निर्धारकों को इस चिन्तनीय विषय पर गहनता से विचार करने की आवश्यकता है।

संसार में मनुष्य के आहार की 16 प्रतिशत ऊर्जा तथा 35 प्रतिशत प्रोटीन पशुओं से प्राप्त होती है। विकसित देशों में पशुओं से प्राप्त होने वाली ऊर्जा व प्रोटीन का मानव आहार में ज्यादा अंशदान है तथा अविकसित व विकासशील देशों में पशु उत्पादों का मनुष्य के भोजन में कम योगदान है। परन्तु यह देखने में आया है कि आर्थिक समृद्धि के साथ-साथ मनुष्य के भोजन में पशु उत्पादों का योगदान भी बढ़ता जाता है। भारतवर्ष में जहां ज्यादातर

आबादी शाकाहारी है, वहाँ दूध ही ऊर्जा तथा प्रोटीन का मुख्य स्त्रोत है। दूध को प्राचीन समय से ही हमारी संस्कृति में सम्पूर्ण आहार का दर्जा प्राप्त है। जन्म से लेकर मृत्यु तक दूध भारत में मनुष्य का सबसे लोकप्रिय खाद्य पदार्थ रहा है। आधुनिक समय में दूध के वैज्ञानिक भण्डारण व प्रसंस्करण से इसकी उपयोगिता और भी बढ़ी है।

भारत वर्ष के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान निरन्तर घटने के बावजूद भी सकल घरेलू कृषि उत्पाद में पशुपालन विशेषतया दूध उत्पादन का अंशदान लगातार बढ़ रहा है। हमारे देश की गेहूं व चावल मुख्य फसल होने के बावजूद, देश में दूध का उत्पादन इन दोनों मुख्य फसलों से ज्यादा एवं महत्वपूर्ण है। देश में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन दूध की उपलब्धता 237 ग्राम है तथा हरियाणा में यह 656 ग्राम है। 1966 में हरियाणा बनने के बाद दूध उत्पादन लगभग पाँच गुणा बढ़ गया है।

आज से तीन-चार दशक पहले हरियाणा प्रदेश के ग्रामीण आँचल में किसान की समृद्धि व उसका सामाजिक स्तर उस द्वारा पाले जाने वाले पशुधन से ही आँका जाता था। हरित क्रान्ति के दौरान गेहूं व धान उत्पादन की तरफ ज्यादा तवज्जो देने के कारण पशुपालन पिछड़ कर रह गया व किसान के मुख्य धन्धे की बजाय सहायक धन्धा बन गया। किसान की दयनीय माली हालत सुधारने के लिए उसको कृषि आधारित सहायक धन्धे अवश्य अपनाने होंगें। बढ़ती जनसंख्या, अन्धाधुन्ध शहरीकरण व औधोगीकरण, घटती कृषि जोत, बेरोजगारी एवं दूध की बढ़ती मांग को दृष्टि में रखते हुए डेयरी व्यवसाय/पशुपालन आज के समय में किसान की प्रगति का एकमात्र रास्ता है। प्रस्तुत पुस्तक में पशुपालकों के लिए सरल भाषा में पशु पालन संबंधी सभी अपेक्षित वैज्ञानिक जानकारी उपलब्ध करवाने का प्रयास किया गया है।

लेखकगण

विषयानुक्रम

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	पशुपालन - वर्तमान स्थिति	1
2.	उन्नत नस्लें	3
3.	पशु-आवास	5
4.	पशु-प्रजनन	9
5.	पशु-आहार	15
6.	चारा-उत्पादन	21
7.	चारा-परिरक्षण	25
8.	प्रमुख रोग व रोकथाम	30
9.	समुचित प्रबन्धन	40
10.	स्वच्छ एवं स्वस्थ दूध उत्पादन	47
11.	दूध एवं दूध उत्पाद	52
12.	डेयरी स्कीम एवं अभिलेख	65

पशुपालन-वर्तमान स्थिति

कृषि प्रधान देश होने के कारण भारतवर्ष में पशुधन तथा दूध उत्पादन के विकास की काफी सम्भावनाएं हैं। दूध-उत्पादन के विकास की सम्भावनाओं के अनुरूप सफलता प्राप्त करने में बहुत सारी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं का समय पर समाधान किये बिना डेयरी व्यवसाय में विकास को वांछित सफलता मिलना बहुत ही कठिन कार्य है। हालांकि हमारा देश दूध उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान पर है किन्तु प्रति पशु औसत दूध उत्पादन काफी कम है। विषम जलवायु, घटिया आनुवंशिकी व कम उत्पादन क्षमता वाले पशु होना, छोटी जोत, पशुपालकों को पशुपालन की वैज्ञानिक जानकारी का अभाव, क्षेत्रीय व मौसम का असन्तुलन, पशुपालन को सह-व्यवसाय के रूप में देखना, असंगठित बाजार, घटिया पशुओं का निस्तारण न करना, उपयुक्त सांख्यिकी व सुदृढ़ पशुपालन नीति का अभाव तथा किसानों की कमजोर आर्थिक स्थिति कम दूध उत्पादन के मुख्य कारण हैं। प्रति पशु औसत दूध उत्पादन को विश्व स्तर पर लाने के लिए इस व्यवसाय में आने वाली प्रमुख समस्याओं का समाधान करना अति आवश्यक है जिनका संक्षेप में वर्णन निम्नलिखित है :-

1. उत्तम नस्ल के पशुओं का चयन

डेयरी फार्म की सफलता उत्तम नस्ल के पशुओं पर निर्भर करती है। हमारे देश में साहीवाल, लाल सिन्धी, थारपारकर, गिर तथा हरियाणा आदि गायों तथा मुर्रा, नीलीरावी, भदावरी, मेहसाना तथा सूरती आदि भैंसों की उत्तम नस्लें हैं जिनका दूध उत्पादन प्रति पशु प्रति ब्यांत 1500 से 3000 लीटर है। यदि इनका चयन एवं पालन-पोषण ठीक प्रकार से किया जाये तो इनकी उत्पादन क्षमता को 15-20 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है।

2. सांड का चुनाव

सांड को समूह का आधा भाग माना जाता है लेकिन गांवों में रखे जाने वाले सांडों व झोटों का चयन उनके आनुवंशिक दूध उत्पादन क्षमता के आधार पर नहीं किया जाता और न ही उनका कोई रिकार्ड होता है। दूसरा झोटों या सांडों का कई-कई सालों तक गर्भाधान के लिए प्रयोग किया जाता है। जिसके कारण अन्त: प्रजनन की समस्या बढ़ जाने के कारण आने वाली पीढ़ियों में बीमारी अवरोधक शक्ति कम हो जाती है। इस तरह से पशुओं के दूध उत्पादन में कमी आने के साथ-साथ प्रजनन सम्बन्धी व्याधियां भी बढ़ जाती हैं। फलस्वरूप पशुपालकों को आर्थिक हानि का सामना करना पड़ता है। पशुपालन में सांड की अहम् भूमिका है अत: सांड का चयन आनुवंशिक गुणवत्ता के आधार पर करना जरूरी है। अन्यथा भविष्य की पीढ़ियों में दूध उत्पादन पर कुप्रभाव पड़ेगा।

3. पशु रोग

प्रति वर्ष लाखों पशुओं में संक्रामक रोगों जैसे गलघोटू, मुंहपका-खुरपका तथा लंगड़ी बुखार (जहरबाद) आदि रोगों का प्रकोप हो जाता हैं। इससे करोड़ों रूपये की आर्थिक हानि हो जाती है। मुंह-खुर पका रोग से पशुओं में मृत्युदर तो कम होती है लेकिन पशु ग्रसित होने पर बहुत कमजोर हो जाता है तथा प्रजनन एवं उत्पादन क्षमता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। छोटे बच्चों में पेट में कीड़े तथा निमोनिया से 25 से 30 प्रतिशत बच्चों की 3 माह की आयु तक मृत्यु हो जाती है। इसलिए इस आयु में उनके रख-रखाव पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

4. पशुघर प्रबन्ध

ग्रामीण क्षेत्रों में पशुघर का निर्माण वैज्ञानिक विधि से नहीं किया जाता तथा अधिकतर पशुघरों में स्थान प्रति पशु कम होता है। यदि पशुघर आरामदायक नहीं होगा तो पशुओं का शारीरिक विकास, दूध उत्पादन तथा प्रजनन शक्ति पर कुप्रभाव पड़ता है। पशु घर में जगह कम होने पर सफाई करने तथा चारा, दाना डालने में कठिनाई होती है। नियमित सफाई न होने के कारण पशुओं के गोबर व पेशाब से उनके चारे व दाने का प्रदूषण होने की सम्भावनाएं बढ़ जाती हैं जिससे पशुओं में रोगों के जीवाणु उत्पन्न हो जाते हैं।

उत्तर भारत में पशुओं के लिए मुक्त पशुघर आरामदायक सिद्ध हुआ है। वैज्ञानिकों के आंकड़ों के अनुसार मुक्त घर में पशुओं के वजन में वृद्धि तथा दूध उत्पादन अधिक पाया गया। अधिक गर्मी व सर्दी के मौसम में थोड़ा सा परिवर्तन करना पड़ता है। मुक्त पशु घर में पशु इच्छानुसार स्वच्छ पानी पी सकता है। खुरली की ऊंचाई तथा चौड़ाई उचित होती है जिससे पशुओं को दाना-चारा खाने में कोई परेशानी नहीं होती। फर्श व नाली का ढलान इतना दिया जाता है कि गोबर व पेशाब की सफाई आराम से हो जाती है। अधिकतर पशुपालक पशुओं को तालाब में पानी पिलाते हैं जो प्राय: स्वच्छ नहीं होता तथा ऐसा पानी पीने से पशु रोगग्रस्त हो जाते

हैं। इसलिए स्वच्छ पानी का प्रबन्ध पशुघर में ही होना चाहिए ताकि पशु संक्रामक रोगों से बच सकें।

5. पशु-आहार प्रबन्ध

ग्रामीण क्षेत्रों में पहले पंचायत की भूमि चरागाहों के लिए प्रयोग में लाई जाती थी परन्तु यह जमीन हर साल घटती जा रही है। हमारे देश में पशुओं के कम दूध उत्पादन का मुख्य कारण पर्याप्त मात्रा में दाना व चारे का न मिलना है तथा पशुओं की दूध उत्पादन की आनुवंशिक क्षमता भी कम है। बछियों व कटड़ियों को पर्याप्त व सन्तुलित आहार न मिलने के कारण उनकी प्रजनन योग्य शारीरिक भार प्राप्त करने में विलम्ब होने पर उनका अनुपयोगी समय बढ़ जाता है तथा आर्थिक हानि होती है।

हरे चारे की खेती कम होने के कारण पशु आहार में प्रोटीन, खनिज तत्वों व विटामिनों की कमी से पशुओं में फूल दिखाना, गर्मी के लक्षण समय पर न दिखाना, गर्भ धारण न करना, कम दूध उत्पादन होना आदि समस्याएं बढ़ती जा रही हैं। इसलिए पशुओं को सारा साल हरा चारा उपलब्ध करवाना चाहिए। क्योंकि हरे चारे से सारे पोषक तत्व सस्ते दरों पर मिल जाते हैं तथा हरा चारा जल्दी हजम हो जाता है। यदि हम पशुओं को सन्तुलित दाना व चारा उपलब्ध करवा सकें तो 15 से 20 प्रतिशत तक दूध उत्पादन तो मौजूद दूधारू पशुओं का ही बढ़ाया जा सकता है।

6. पशुचिकित्सालयों की कमी

विभिन्न राज्यों में पशुपालन विभाग द्वारा खोले गये राजकीय पशु चिकित्सालयों में पशु चिकित्सा के लिए पशु चिकित्सकों की कमी हैं जिसके कारण समय पर पशुओं का इलाज नहीं हो पाता है और महामारी के कारण पशु मर जाते हैं। पशु चिकित्सकों की कमी के कारण पशु प्रजनन (अपग्रेडिंग) के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करना भी असम्भव सा हो गया है। इस कार्य के लिए राज्य सरकारों को पशु प्रजनन केन्द्रों तथा पशु चिकित्सा केन्द्रों की स्थापना निर्धारित पशु संख्या पर करनी चाहिए। गैर-व्यावसायिक होने के कारण इन सुविधाओं का पर्याप्त उपयोग पशुओं के नस्ल सुधार व उपचार के क्षेत्र में नहीं हो पा रहा है।

पशुओं की संख्या को मध्यनजर रखते हुए पशु रोग निदान प्रयोगशालाओं की संख्या अत्यंत कम है। इनकी संख्या में वृद्धि करने की जरूरत है क्योंकि पशुओं के अनेक रोगों की पशु चिकित्सकों को पहचान नहीं हो पाती है। पशु चिकित्सालयों में खून, पेशाब व गोबर की जांच करने की सुविधा भी कम है। राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड द्वारा राज्यों में इन प्रयोगशालाओं को खोलने के लिए वित्तीय संसाधनों की व्यवस्था करनी चाहिए।

7. प्रचार तथा प्रसार का अभाव

देश के देहाती क्षेत्रों में क्षेत्रीय भाषाओं की विविधता है। कृषि विश्वविद्यालयों, पशु चिकित्सा महाविद्यालयों, पशु विज्ञान महाविद्यालयों, पशुपालन व डेयरी के शोध संस्थानों द्वारा समय-समय पर पशुपालन के विभिन्न क्षेत्रों में जो नई तकनीक विकसित होती है उनका पूरा लाभ पशुपालकों तक नहीं पहुंच पाता है। इसलिए देश के सभी राज्यों में क्षेत्रीय भाषाओं में साहित्य तैयार करने की जरूरत है।

9. पशु संख्या

हमारे देश में संसार के 2 प्रतिशत क्षेत्रफल पर दुनिया के लगभग 15 प्रतिशत पशु पाले जाते हैं। अनुपयोगी तथा कम उत्पादन देने वाले पशुओं की संख्या हमारे देश में अधिक है। अनुपयोगी पशुओं की संख्या ज्यादा होने के कारण उपयोगी पशुओं को आवश्यकतानुसार चारा, दाना तथा अन्य सुविधाओं की कमी हो जाती है। परिणामस्वरूप उनका उत्पादन कम हो जाता है। जनसंख्या का दबाव भूमि पर अधिक होने के कारण पशुओं के लिए हरे चारे व दाने की कमी होती जा रही है। इसलिए पशुपालकों को अनुपयोगी पशु नहीं रखने चाहिये। अशुद्ध नस्ल के सांडों को बधिया करवा देना चाहिए।

10. डेयरी को व्यवसाय के रूप में न अपनाना

अधिकतर पशुपालक डेयरी धन्धे को एक व्यवसाय के रूप में न अपनाकर केवल सहायक धन्धे तक सीमित रखते हैं जिसके कारण डेयरी व्यवसाय ग्रामीण क्षेत्रों में विकसित नहीं हो सका है। यदि पशुपालक डेयरी या दूध उत्पादन कार्य को व्यवसाय के रूप में अपनायें तो बेरोजगारी की समस्या का समाधान स्वतः ही हो सकता हैं। पशुपालन विभाग तथा डेयरी विकास की सभी योजनाओं को उत्पादन से मिलाकर व्यवसायिक आधार पर संचालन करवाने की जरूरत है। नौजवानों को इस दिशा में जागरूक करने की भी अत्यन्त आवश्यकता है।

उन्नत नस्लें

हमारे देश में दूध उत्पादन के लिए अभी तक मुख्य रूप से देसी गायों और भैंसों का प्रयोग किया जाता रहा है। देश में इस समय पांच किस्म के गो-पशु उपलब्ध हैं जो इस प्रकार हैं - अधिक दूध देने वाली नस्लें, द्वि-प्रयोजनीय नस्लें, हल चलाने और भार ढोने वाली नस्लें, विदेशी नस्लें और संकर नस्लें। यहां दूध देने वाली मुख्य नस्लों के संबंध में विस्तारपूर्वक चर्चा की जा रही है।

अधिक दूध देने वाली गायों की नस्लें

साहीवाल – इसका मूल स्थान पंजाब (पाकिस्तान) के मध्यवर्ती और दक्षिणी सूखें क्षेत्र, रावी नदी के आसपास के स्थान, विशेष रूप से मौंटगुमरी जिला और भारत के राजस्थान एवं पंजाब के अधिकांश भाग हैं। ऊपर से नीचे तक फैला भारी भरकम शरीर, छोटी टांगें, पतली व ढीली-ढाली खाल, थोड़ा-सा चौड़ा माथा, छोटे और मोटे सींग इसकी विशेषताएं हैं। रंग लालीयुक्त भूरा होता है जिस पर सफेद दाग भी पाए जा सकते हैं। कोड़े जैसी लंबी पूंछ धरती को छूती रहती है। थन बड़े व नर्म होते हैं। गांवों में 1400 लीटर दूध प्रति ब्यांत व फार्म पर उचित प्रकार से पाली गई गायें 3175 लीटर दूध प्रति ब्यांत तक देती हैं। बैल सुस्त होते हैं, पर धीमें कार्यों के लिए उपयोगी होते हैं। कुकुद (हम्प) बड़ा तथा गले के नीचे की तरफ काफी लटकी हुई गलकम्बल या झालर होती है।

हरियाणा गाय – यह नस्ल हरियाणा राज्य के रोहतक, हिसार, करनाल, गुड़गांव, भिवानी जिले तथा देश के अन्य राज्यों दिल्ली, उत्तरप्रदेश, राजस्थान में पायी जाती है। इस नस्ल के बैल बहुत लोकप्रिय है। इनका सामान्यत: रंग सफेद तथा हल्का धूसर, कद ऊंचा, सींग गुठठल, चेहरा पतला व लम्बा, चुस्त व छोटे कान, उठी हुई ठुई (हम्प), बड़ी तथा

चमकीली आंखें, खिंचा हुआ मुतान, चपटा माथा तथा लम्बी व पतली लेकिन मजबूत टांगें होती है। गायों का औसत दूध उत्पादन 1500 लीटर प्रति ब्यांत होता है। इस नस्ल की गायों का औसत भार 350-400 कि.ग्रा. तथा सांडों का औसत भार 475-550 कि.ग्रा. होता है। बैलों तथा दूध दोनों की दृष्टि से यह नस्ल इन क्षेत्रों में काफी लोकप्रिय है, क्योंकि इस नस्ल के बैल चुस्त तथा फुर्तीलें होते है तथा कृषि कार्यो तथा बोझा ढ़ोने में सक्षम होते हैं।

भैंसों की मुख्य नस्लें

मुर्रा – हरियाणा के रोहतक, जींद, करनाल, हिसार और गुड़गांव जिलों, दिल्ली, पश्चिम उत्तर प्रदेश के कुछ जिलों में पाई जाती है। शरीर भारी भरकम होता है। गर्दन व सिर अपेक्षाकृत हल्के होते हैं। सींग छोटे और बहुत अधिक मुड़े (रूण्डे) होते हैं। थन अच्छी तरह विकसित होते हैं। कूल्हें चौड़े और पिछला भाग शिथिल होता है। पूंछ लंबी होती है जो टखनों तक लटकती रहती है। रंग बहुत काला होता है। पूंछ पर 6 इन्च तक सफेद बाल होते हैं। भैंस दूध तथा मक्खन की

दृष्टि से उत्तम होती है। प्रति ब्यांत 1360-2270 किलोग्राम तक दूध मिलता है। अधिकतम दूध उत्पादन 3200 किलोग्राम प्रति ब्यांत है। कुछ भैंसें 20-24 किलोग्राम दूध प्रतिदिन दे देती है।

भदावरी – यह नस्ल उत्तर प्रदेश के आगरा जिले के भदावार क्षेत्र, बाह तहसील और इटावा तथा मध्य प्रदेश के ग्वालियर क्षेत्र में पाई जाती है। शरीर मझौले आकार का, आगे की और पतला और पीछे की ओर चौड़ा होता है। सिर छोटा, सींगों के बीच उभरा होता हैं, टांगे छोटी तथा मजबूत होती हैं। खुर काले होते हैं। मादा पशुओं का पिछला भाग अधिक ऊंचा व भारी होता है। पूंछ लंबी और पतली होती हैं जिसके छोर पर पिछली टांगों के जोड़ पर काला सफेद या बिल्कुल सफेद झब्बा रहता है। रंग तांबे जैसा होता है। बाल छिदरे और जड़ में काले होते हैं। प्रति ब्यांत, 1200 लीटर तक दूध मिलता है। दूध में चिकनाई अधिक होती है। भैंसे जोते जाते हैं। ये काली नस्ल के भैंसों की अपेक्षा अधिक तापमान सह लेते हैं।

सूरती – गुजरात और महाराष्ट्र इसके मूल स्थान हैं। शरीर का आकार उतम और कुछ मध्यम होता है। पेट आगे की ओर पतला और पीछें की ओर चौड़ा होता है। सिर लंबा और चौड़ा, सींगों के बीच में गोल और पीठ सीधी होती हैं। सींग दरांती जैसे लंबें और चपटे होते हैं। पूछ लंबी होती है जिसके छोर पर

सफेद झब्बा होता है। रंग काला या भूरा होता है। गले और छाती पर सफेद पट्टियां होती हैं जिन्हें स्थानीय लोग 'जनेऊ' कहते हैं तथा इसी के हिसाब से नस्ल का अनुमान लगाते हैं। अच्छे प्रबन्ध की अवस्था में 1650 लीटर प्रति ब्यांत तक दूध मिलता है।

मेहसाना – गुजरात का बड़ौदा क्षेत्र इसका मूल स्थान है। शरीर मुर्रा के मुकाबले लंबा होता है। सिर लंबा व भारी होता है। सींग मुर्रा के मुकाबले कम मुड़े हुए, अधिक लंबे और थन बड़े होते हैं। रंग काला या हल्के पीलेपन से युक्त धूसर होता है। चेहरे, टांगों और पूंछ के छोर पर सफेद दाग पाए जाते हैं। शुद्ध नस्ल न होने पर भी दूध अधिक देती है। प्रति ब्यांत 1825-2360 किलोग्राम तक दूध देने की क्षमता रखती है।

नीली रावी – पंजाब की सतलुज घाटी, विशेषकर फिरोजपुर जिला और पाकिस्तान का मौंटगुमरी जिला इसका मूल स्थान है। सिर लम्बा, उपर से उठा हुआ और आंखों के बीच कुछ दबा होता है। थुथुन सुंदर होती है। आकार मध्यम होता है। सींग छोटे और ढीले कुंडल के रूप में होते हैं। गर्दन लंबी, पतली और सुंदर होती है। थन विकसित होते हैं। पूंछ लंबी, रंग काला और माथे, थुथुनी व टांगों पर सफेद दाग होते हैं। प्रति ब्यांत औसत 1585 किलोग्राम (250 दिन में) तक दूध मिलता है।

पशु-आवास

अधिक दूध उत्पादन के लिए पशुओं को एक आरामदायक आवास की आवश्यकता होती है। पशुओं के परिपूर्ण प्रबन्धन के लिए एक सुनियोजित पशुशाला का निर्माण किया जाना चाहिए। गलत तरीके से बनाये गये आवास में उत्पादन लागत बढ़ने के बावजूद भी दूध उत्पादन कम हो जाता है। एक आरामदायक व परिपूर्ण आवास के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए :-

- आवास की लागत
- पशुओं के लिए आरामदायक व स्वास्थ्यवर्धक
- गर्मी-सर्दी व वर्षा से सम्पूर्ण बचाव
- सुनियोजित सफाई व्यवस्था
- मलमूत्र निकासी का उचित प्रबन्ध
- ज्यादा टिकाऊ
- स्वच्छ व स्वस्थ दुग्ध उत्पादन का प्रबन्ध
- कम मजदूरी में ज्यादा कार्य
- हवा व रोशनी की समुचित व्यवस्था
- पशुशाला के चारों ओर वृक्षारोपण
- आयु तथा उत्पादन के आधार पर पशुओं का अलग-अलग आवास।

आवास के लिए जगह का चुनाव

फार्म पर उत्पादित किया गया दूध बाजार में बेचना होता है। इसलिए पशुशाला मण्डी के नजदीक होनी चाहिए ताकि कम समय तथा कम खर्च पर दूध बाजार तक भेजा जा सके। ऐसा करने से दूध न केवल खराब होने से बचेगा बल्कि उसका मूल्य भी अधिक मिलेगा।

डेयरी फार्म पर पशुओं को नहलाने, पिलाने व सफाई के लिए बहुत ज्यादा पानी की आवश्यकता होती है; इसलिए फार्म पर बिजली व पानी की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। पशु आवास ऊंची व समतल जगह पर बनाना चाहिए ताकि वर्षा के पानी व मलमूत्र की निकासी आसानी से हो सके और पशुशाला सूखी रहे व पशुओं का स्वास्थ्य ठीक रह सके। आवास के लिए भूमि उपयुक्त आकार में खरीदी जानी चाहिए ताकि भविष्य में विस्तार के लिए मंहगी जमीन न खरीदनी पड़े। मकान की दिशा इस प्रकार से बनानी चाहिए ताकि उत्तर की दिशा से ज्यादा धूप आए तथा ठण्डी व गर्म हवाओं के दुष्प्रभावों से पशुओं को बचाया जा सके। आवास आम रास्ते पर होना चाहिए जिससे यातायात की सुविधा बनी रहे। पशु आवास पर टेलिफोन इत्यादि की सुविधा भी होनी चाहिए।

फार्म पर भवन बनाने की योजना

फार्म पर अलग-अलग तरह के भवनों जैसे पशुशाला, दूधशाला, भूसाघर, दफ्तर, दरवाजे आदि एक योजनाबद्ध तरीके से बनाने चाहिएं। भवन का निर्माण इस प्रकार करना चाहिए ताकि सभी प्रकार की ईमारतें व काम करने वाले मजदूर प्रबन्धक की नजरों में रहें।

आमतौर पर पशुशाला का निर्माण उत्तर-दक्षिण में किया जाता है और पशुओं के लिए खाली जगह उत्तर की तरफ रखी जाती है जिससे सर्दियों में पशुओं पर धूप आ सके। किसान या फार्म प्रबन्धक का कार्यालय व घर इस तरह बनाया जाना चाहिए ताकि गर्मी-सर्दी में चलने वाली हवाओं से दुर्गन्ध ना आ सके। पशुशाला, दुग्धशाला, भूसा स्टोर, चारा काटने की मशीन, पीने के पानी की व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए जिससे मजदूरी की बचत हो सके।

पशु-आवास के प्रकार

आमतौर पर दुग्ध उत्पादक अपने पशुओं को कच्चे फर्श पर रस्सी या लोहे की चेन के साथ बांधते हैं। अनियोजित ढ़ंग से बनवाये गये आवास में पशु इधर-उधर घूमते रहते हैं और चारा भी काफी मात्रा में खराब हो जाता है और न ही पशु गर्मी-सर्दी में आराम से रह सकते हैं। आमतौर पर दो तरह के पशु आवास बनाए जाते हैं।

1. खुली आवास-व्यवस्था

इस तरह के आवास में पशु आमतौर पर खुले रहते हैं। इन्हें केवल दूध निकालने व उपचार के समय ही बांधा जाता है। इस व्यवस्था में जगह का एक-तिहाई हिस्सा ऊपर से छत द्वारा ढ़का होता है तथा दो-तिहाई हिस्सा खुला रहता है। बाड़े में बनी एक टंकी से पशु पानी पीते हैं तथा एक लम्बी खुरली से पशु चारा खाते हैं जो छत से ढ़के हुए स्थान पर बनी होती है। इस तरह का आवास बहुत कम लागत वाला होता है।

इसकी मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं :-

- कम निर्माण लागत।
- बिना किसी परिवर्तन के भविष्य में निर्माण विस्तार सम्भव।
- पशु का गर्मी में आने का जल्दी पता लगना।
- पशु आजाद रहता है तथा कम लागत में अधिक दूध देता है।
- प्रबन्ध में आसानी।
- पशु की आवश्यक कसरत आसानी से हो जाती है जो स्वास्थ्य के लिए जरूरी है।

खुली आवास व्यवस्था में पशुओं के खाने व पीने का, दुग्धशाला, ब्याने वाली भैंसों के लिए एवं छोटे कटड़े-कटड़ियों के लिए अलग से आवास व्यवस्था की जानी चाहिए। प्रत्येक छप्पर में पशुओं को खाने के लिए खुर्ली, पीने के पानी व मलमूत्र आदि की निकासी का उचित प्रबन्ध होना चाहिए। गर्मियों में पशुओं के बैठने के लिए छायादार वृक्षों का रोपण करना चाहिए।

2. बन्द आवास-व्यवस्था

इस तरह के आवास में पशुओं को हर समय रस्से या लोहे की चेन से बांध कर रखा जाता है। पशुओं को खुराक देना व दूध निकालना एक ही जगह पर किया जाता है। इस तरह के आवास से पशुओं व पशुशाला में काम करने वाले मजदूरों का गर्मी-सर्दी से बचाव रहता है तथा बिमारी का नियंत्रण बेहतर होता है। यह व्यवस्था उन स्थानों पर उपयुक्त है जहां सर्दी लम्बे समय तक रहती है।

आवास

यदि फार्म पर दस से कम पशु हैं तो यह एकल कतार का हो सकता है। ज्यादा पशु होने पर इसे दो कतार का बनाया जाना चाहिए। दो कतार का पशुओं का आवास दो प्रकार का होता है।

अ) चेहरे से चेहरा विधि

ब) पूंछ से पूंछ विधि

इस विधि के निम्नलिखित लाभ हैं :

- बीमारी फैलने की सम्भावना कम।
- देखने में अच्छा लगता है।
- पशुओं के लिए अधिक स्वच्छ हवा।
- पशु अपनी जगह पर आसानी से पहुंच जाता है।
- दूध निकालते समय आसान निरीक्षण।
- सूर्य की रोशनी आसानी से पहुंच जाती है।
- बीमार पशु की पहचान आसान।
- पशुओं को चारा डालने में आसानी रहती है।
- कम मजदूरी की आवश्यकता।
- कम जगह के लिए ज्यादा उपयुक्त।

ब्याने वाली भैंसों के लिए आवास

ब्याने वाली भैंसों को दुग्धशाला में रखा जाना अवांछनीय है। ऐसा करने से पशुओं के स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पड़ता है तथा ग्याभिन पशुओं में संक्रमित गर्भपात का खतरा बढ़ जाता है। इसलिए ब्याने वाले पशुओं के लिए नरम बिछावन वाला व हवादार आवास 150 वर्गफुट प्रति पशु के हिसाब से बनाया जाना चाहिए।

छोटे बच्चों के लिए आवास

छोटे कटड़े-कटड़ियों को कभी भी बड़े पशुओं के साथ नहीं रखना चाहिए। बिना हवादार आवास और उचित मलमूत्र निकासी के छोटे बच्चों में श्वास सम्बन्धी समस्याएं हो जाती हैं। एक साल से कम उम्र के कटड़े कटड़ी इकट्ठे रखने चाहिएं। एक साल से ऊपर के नर व मादा कटड़े-कटड़ी अलग-अलग रखने चाहिएं जबकि यह आवास भैंस या गाय के आवास के नजदीक बनाया जाना चाहिए।

सांड के लिए आवास

सांड के लिए आवास बनाते समय कार्यरत व्यक्तियों की सुरक्षा, पशु का आराम, गर्मी-सर्दी से बचाव एवं सांड के लिए उचित कसरत का ध्यान रखा जाना चाहिए। सांड आवास में अलग से चारे के लिए खुरली व पीने के पानी की व्यवस्था होनी चाहिए। जहां तक सम्भव हो सके सांड आवास में बिना अन्दर जाए चारा व पानी का प्रबन्ध होना चाहिए। सांड आवास की दीवारें ऊंची होनी चाहिएं ताकि वह ऊपर से छलांग न लगा सके।

दुग्धशाला

दुग्धशाला पूरी ढकी हुई होनी चाहिए। क्योंकि वहां पर बहुत सारे कार्य करने होते हैं, इसलिए यह डेयरी फार्म के बीच में स्थित होनी चाहिए। दुग्धशाला में दूध देने वाले एक तिहाई पशुओं की दूध निकालने की क्षमता होनी चाहिए। दुग्धशाला में निकासी का उचित प्रबन्ध होना चाहिए ताकि दुग्ध निकालने के तुरन्त बाद धोकर साफ किया जा सके। दुग्धशाला में पंखों का प्रबन्ध होना चाहिए ताकि यह धोने के बाद जल्दी सूख सके। दुग्धशाला के दरवाजे जालीदार होने चाहिएं जिससे कीटों का प्रवेश न हो सके।

बीमार पशु-आवास

बीमार पशुओं का आवास ब्याने वाली भैंसों की तरह बनाना चाहिए। यह आवास डेयरी फार्म के एक कोने में तथा दूर होना चाहिए ताकि स्वस्थ पशुओं को बीमारी न लगे।

फार्म भण्डार

फार्म पर औजार, दाना, चारा, हे, इत्यादि की मात्रा के अनुरूप भण्डार का निर्माण करना चाहिए। भण्डार का निर्माण ऐसी जगह करना चाहिए जहां आवश्यक वस्तुओं को कम समय व कम मजदूरी से पशुओं तक पहुंचाया जा सके।

खुरली

खुरली का आकार पशुओं की संख्या के अनुरूप होना चाहिए तथा इसका अगला हिस्सा ज्यादा टिकाऊ और सफाई के लिए सरल बनाना चाहिए। ऊंची खुरली के लिए सामने का हिस्सा 75 सैंटीमीटर, चौड़ाई 50 सैंटीमीटर तथा गहराई 40 सैंटीमीटर होनी चाहिए। नीची खुरली के लिए 30-40 सैंटीमीटर ऊंचाई होनी चाहिए। नीची खुरली ज्यादा ठीक रहती है लेकिन इसमें चारे की बर्बादी अधिक होती है। खुरली का पिछला हिस्सा 130 सैंटीमीटर ऊंचा होना चाहिए।

तालिका 1. पशु घर में प्रति पशु जगह की आवश्यकता

पशु	फर्श की जगह (वर्ग मीटर)		ज्यादा से	पानी के लिए	चारे के लिए
	ढका स्थान	खुला स्थान	ज्यादा पशु	(वर्ग सैं.मी.)	(वर्ग सैं.मी.)
सांड	12.0	120.0	1	60-75	60-75
गाय	3.5	7.0	50	45-60	60-75
भैंस	4.0	8.0	50	60-75	60-75
छोटे बच्चे	1.0	2.0	30	10-15	40-50
बड़े बच्चे	2.0	4.0	30	30-45	45-60

फर्श

पशुशाला के अन्दर के फर्श पक्के, टिकाऊ, फिसलन रहित तथा आसानी से साफ होने वाले बनाने चाहिएं। फिसलने वाले फर्श पर पशु को गिरकर चोट लगने का भय बना रहता है। फर्श का ढलान हर 12 मीटर पर 2.5 सैं.मी. होना चाहिए ताकि मलमूत्र की निकासी में आसानी रहे। फर्श सीमेन्ट या ईटों से बनाया जा सकता है। नाली की चौड़ाई 40 सैं.मी. तथा गहराई 5 सैं.मी. हो।

दीवार

पशुशाला के अन्दर की दीवारों का सीमेन्ट से पलस्तर करना चाहिए ताकि धूल, मिट्टी इत्यादि न जमे व पशुशाला में नमी न रहे। दीवारों व फर्श में गडढ़े, दरारों आदि में चीचड़ व अन्य कीट अण्डे दे देते हैं। पशुशाला की दीवार 4-5 फुट ऊंची बनाकर सीमेन्ट या लोहे के पोल पर छत लगाना सस्ता एवं पशुओं के लिए आरामदायक व हवादार रहता है।

छत

पशुशाला की छत, ऐस्बैस्टस या लोहे की चद्दरों से बनाई जा सकती है। लोहे की शीट से बनी छत में गर्मी-सर्दी का बचाव कम रहता है। इसलिए लोहे की छत को ऊपर से सफेद और नीचे से काला रोगन करके ज्यादा गर्मी से बचा जा सकता है। छत ढलान में बनाकर तथा 8 फुट आगे से और 15 फुट पीछे से ऊंची बनाएं।

पानी का प्रबन्ध

डेरी फार्म पर पानी का प्रयोग पशुओं को पिलाने व नहलाने, बर्तन तथा फर्श साफ करने के लिए होता है। एक दूध देने वाले पशु को 35-40 लीटर पानी पीने के लिए व 75 लीटर पानी सफाई के लिए चाहिए। पानी का प्रबन्ध ऐसा होना चाहिए कि पशु कभी भी अपनी इच्छानुसार ठंडा तथा साफ पानी पी सके।

खाद का गड्ढ़ा

यद्यपि पशुओं का गोबर फसलों के लिए बहुत लाभकारी है लेकिन सफाई न करने पर यह बीमारियों के कीटाणुओं और अन्य कीटों के लिए प्रजनन का स्थान बन जाता है। इसलिए पशुशाला से गोबर तुरन्त हटाते रहना चाहिए। गोबर को गड्ढ़े में डालकर और इसे गला सड़ा कर खाद बना लेनी चाहिए। एक वयस्क पशु प्रतिदिन 25-30 किलोग्राम गोबर देता है और 700-1000 किलो गोबर को प्रति घन मीटर में भण्डारण किया जा सकता है। इस प्रकार से किसान गड्ढ़े का आकार बना सकते हैं। स्वास्थ्य के उद्देश्य से गोबर का गड्ढ़ा, कुएं, पानी का तालाब, दुग्धशाला, घर व दफ्तर से दूर बनाना चाहिए। इसके अतिरिक्त गोबर से वर्मीकम्पोस्ट तथा फार्म के कचरे से कम्पोस्ट खाद भी तैयार की जा सकती है।

तालिका 2. पशु फार्म पर उपलब्ध विभिन्न व्यर्थ पदार्थों में पाये जाने वाले पोषक तत्वों की मात्रा

खाद/कचरा	नाइट्रोजन (प्रतिशत)	फास्फोरस (प्रतिशत)	पोटाश (प्रतिशत)
गाय का गोबर	1.23	0.55	0.69
भैंस का गोबर	1.91	0.56	1.40
धान की पराली	1.70	0.37	2.92
गन्ने की खोई	0.55	0.09	2.39
घरेलू कचरा	0.98	1.04	1.06

तालिका 3. प्रति क्विंटल चारा भण्डारण के लिए स्थान

चारा	स्थान (घन मीटर)	चारा	स्थान (घन मीटर)
हे (खुली)	1.60	हे (गांठ)	0.70
हे (सानी)	0.60	भूसा (खुला)	3.00
भूसा (गांठ)	0.70	चोकर	0.50
दाना	0.17	खल	0.17

पशु-प्रजनन

पशुपालन व्यवसाय में पशुपालक की मुख्य आय पशु द्वारा उत्पादित दूध एवं उनके बच्चों की बिक्री से होती है। इस व्यवसाय से निरन्तर लाभ अर्जित करने के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक पशु साल में एक बच्चा अवश्य दे। इसके लिए आवश्यक है कि पशुओं का प्रजनन प्रबन्धन सही तरीके से हो। प्रजनन से तात्पर्य है अपनी ही जाति के बच्चों को जन्म देना। मादा पशुओं में दो डिम्बग्रन्थियां (ओवरीज) तथा नर पशु में दो अण्डकोष (टेस्टीकल्स) होते हैं जो क्रमश: अण्डा व शुक्राणु पैदा करते हैं। मादा पशु में डिम्बग्रन्थि से बहुत थोड़े अण्डे या डिम्ब पैदा होते हैं जबकि नर के वीर्य में करोड़ों शुक्राणु होते हैं। जब नर से पैदा शुक्राणु का मादा से उत्पन्न डिम्ब के साथ फर्टीलाइजेशन (सांसिक्त) होता है तो भ्रूण की उत्पत्ति होती है। मादा तथा नर में जब यौवन प्रारम्भ होता है तभी डिम्ब व वीर्य की उत्पत्ति होती है। यौवन की उम्र नस्ल व जाति पर निर्भर करती है। भोजन, प्रबन्धन तथा वातावरण से भी यौवनारम्भ अवस्था पर प्रभाव पड़ता है। उत्तम आहार व प्रबन्धन की दशा में यह उम्र भारतीय गायों व भैंसों में 25 से 30 महीने होती है। लेकिन किसानों द्वारा पाले जाने वाले पशुओं में यह उम्र ज्यादा होती है।

पशु में गर्मी के लक्षण

यदि सही समय पर पशु का गर्मी में आने का पता न लगे तो पशुपालक को काफी हानि होती है। इससे बछड़ियों/झोटियों की प्रथम ब्यांत की उम्र बढ़ जाती है तथा भैंसों गायों में दो ब्यांतों के बीच का समय बढ़ जाएगा जिससे मादा पशु काफी समय तक बिना दूध दिये खड़ी रहेगी तथा पूरे जीवनकाल में कम बच्चे देगी एवं कुल दूध उत्पादन (जीवनकाल) भी कम हो जाएगा।

अच्छे पशु की पहचान

- कम उम्र में गर्मी में आना तथा प्रथम ब्यांत की कम उम्र।
- दो ब्यांतों में कम अन्तर यानि लगभग 12-13 महीने में एक बच्चा पैदा करना।
- वर्ष भर में लगभग 300 दिन दूध उत्पादन।
- कम शुष्क समय (लगभग 60 दिन)।
- ब्याने के लगभग 45-90 दिन के अन्दर गर्भधारण करना।

एक सफल डेयरी फार्म के लिए यह आवश्यक है कि उसके 90 प्रतिशत पशु ब्याने के 50-60 दिन बाद गर्मी में आएं। इसके लिए जरूरी है कि पशुपालक सुबह एवं सांयकाल अपने पशुओं को गर्मी के लक्षणों हेतु सतत् ध्यान रखें। अगर पशुपालक इस ओर ध्यान नहीं देता तो कुछ पशु जो 'साइलेंट हीट' (आम भाषा में गूंगा आमा) में होंगे वे बिना गर्भाधान के रह जाएंगे तथा पशुपालक को आर्थिक हानि उठानी पड़ेगी। जो पशु ब्याने के 90 दिन बाद तक गर्मी में नहीं आते उनकी पशु चिकित्सक से जांच करवानी चाहिए। आमतौर पर भैंसे रात के समय गर्मी में आती हैं अत: सुबह के समय दो घंटे तक बधिया सांड को भैंसों के साथ खुला छोड़ दें ताकि 'साइलेंट हीट' की समस्या पर काबू पाया जा सके। इसके अलावा गाय व भैंसों में गर्मी में आने के लक्षण निम्न हैं :-

- योनि से चिपचिपा या लेसदार तरल पदार्थ निकलना तथा योनि का रंग लाल होना एवं सूजना।
- पशु का जोर-जोर से रंभाना, उत्तेजित होना तथा बेचैन रहना।
- गर्मी में आने पर पशु बार-बार पेशाब करता है तथा पूंछ को ऊपर रखता है। पशु को खोलने पर इधर-उधर भागता है व दूसरे पशुओं पर चढ़ता है अथवा दूसरे पशु उस पर चढ़ते हैं।
- पशु चरना कम कर देता है तथा दूध उत्पादन कम हो जाता है जिसे आम भाषा में 'डोका करना' कहते हैं।
- पशु के शरीर का तापमान बढ़ जाता है जिसे दूध निकालते वक्त महसूस किया जा सकता है।

प्रजनन सम्बन्धी समस्याएं

मादा पशुओं में प्रजनन सम्बन्धी समस्याओं में प्रमुख रूप से स्थाई एवं अस्थाई बांझपन, मदहीनता, साइलेंट हीट, फिरावट होना, जेर अटकना तथा गर्भाशय का बाहर निकलना (फूल दिखाना) आदि हैं।

1. अमादकता या गर्मी में न आना

सामान्यत: यौवन अवस्था के बाद पशु का मदकाल केवल गर्भावस्था एवं ब्याने के कुछ समय बाद तक ही बन्द रहता है। इसके अलावा गाय-भैंस प्रत्येक 19 से 22 (औसत 21 दिन)

दिन पर गर्मी में आती रहनी चाहिएं जब तक कि वह गाभिन न हो जाए। पशु का लगातार गर्मी में न आना या बिलकुल न आना ही अमादकता या मदहीनता कहलाता है। मदहीनता मुख्य रूप से कुपोषण जैसे ऊर्जा, आवश्यक खनिज लवण, विटामिन की कमी, अत्यधिक गर्मी, गर्भाशय के संक्रमण आदि से होती है। कभी-कभी पशु गर्मी में आता है परन्तु गर्मी के लक्षण इतने हल्के व कम समय के लिए होते हैं कि पशुपालकों को इसका पता भी नहीं चल पाता। कुछ पशुओं की डिम्बग्रंथियां क्रियाशील न होना भी मदहीनता का एक कारण है। कुछ पशुओं में जन्मजात या पैतृक कारणों से भी जनन ग्रंथियों में खराबी आने के कारण प्रजनन अंगों में बदलाव आ जाता है। ऐसी स्थिति में जब मादा पशु विकसित होते हैं तो प्रजनन से वंचित रह जाते हैं। इन पशुओं की मुख्यत: डिम्बग्रंथी, अण्डनली या गर्भाशय विकृत हो जाते हैं। ये आवश्यक अंग पशुओं में बनते ही नहीं हैं। ऐसी स्थिति में पशु कभी भी प्रजनन नहीं कर सकते। अत: ऐसे पशुओं का चिकित्सीय परीक्षण करवाकर उनको निकाल देना चाहिए। कई बार गाय/भैंस के ब्याने पर दो बच्चे पैदा होते हैं। उनमें से मुख्यत: वह जोड़ा, जिसमें से एक बछड़ा व दूसरी बछड़ी पैदा हुई हो, ऐसे जोड़ों में पैदा हुई बछड़ी कभी भी प्रजनन नहीं कर सकती क्योंकि उसके साथ जो बछड़ा पैदा हुआ है उसके कारण गर्भाक्षय में ही इस बछड़ी के प्रजनन अंग विकृत हो जाते हैं। अत: ऐसी मादा को भी निकाल देना चाहिए।

2. कुपोषण जन्य समस्याएं

पशुओं के आहार में सभी पोषक तत्वों जैसे शर्करा, प्रोटीन, खनिज, विटामिन्स आदि का सन्तुलित मात्रा में होना आवश्यक है। इन पोषक तत्वों में असन्तुलन ही कुपोषण कहलाता है। पशु का कमजोर होना, बालों एवं त्वचा का खुरदरापन, आंखों में चमक कम होना आदि पशु के स्वास्थ्य एवं कुपोषण की ओर इशारा करते हैं। पशु की प्रजनन क्षमता को प्रभावित करने वाले कारणों में खनिज लवणों तथा विटामिनों का विशेष महत्व है। इन तत्वों की कमी से पशु में मदहीनता या बार-बार मद में आना जैसी परेशानियां पैदा हो जाती हैं। पशुओं को हरे चारे के साथ-साथ सन्तुलित आहार भी नियमित रूप से मिलना चाहिए। हरे चारे में भी खनिज तत्व व विटामिन्स होते हैं। पशुओं के आहार में 16 प्रतिशत कच्ची प्रोटीन व 70-72 प्रतिशत कुल पाचक तत्व होने चाहिएं।

3. प्रजनन अंगों के रोग

पशुओं को प्रजनन के समय या प्रजनन के बाद गन्दगी वाले स्थानों पर रखने से पशु के प्रजनन अंगों में योनि द्वारा कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं एवं रोग उत्पन्न करते हैं। ऐसे रोगग्रसित पशुओं की जब तक चिकित्सा न कराई जाए तो वे गाभिन नहीं होते। पशुओं को गन्दगी में बांधने से निम्न बीमारियां हो सकती हैं :-

क) गर्भाशय में मवाद

पशु के योनिद्वार से कीटाणु प्रवेश कर जाने के कारण गर्भाशय की बीमारी से उसमें मवाद या पीप बन जाती है। मादा पशु हालांकि गर्मी में आते हैं परन्तु मवाद के कारण गाभिन नहीं हो पाते। अत: पशुपालकों को ऐसे पशुओं की चिकित्सीय जांच करवाकर ईलाज करवाना चाहिए।

ख) गर्भाशय का बाहर आना (प्रौलेप्स)

पशु के प्रसव से पहले, प्रसव के समय या जेर डालते वक्त अथवा बाद में पूरा गर्भाशय बाहर निकल आता है जिससे पशु को भयंकर तकलीफ होती है तथा कई बार पशु मर भी जाता है। जिस पशु का गर्भाशय थोड़ा बाहर आता हो उसके बांधने की जगह को पीछे से ऊंची कर दें तथा उसको नियमित रूप से खनिज मिश्रण दें। निकले हुए भाग को लाल दवाई के घोल से अच्छी तरह धोकर साफ हाथों से आहिस्ता से अन्दर कर दें। इस बीमारी से ग्रस्त पशुओं को तुरन्त चिकित्सीय सहायता दिलवायें।

ग) योनि में सूजन

पशुओं को गन्दी जगह बांधने के कारण मादा पशुओं की योनि की झिल्लियां लाल हो जाती हैं जिस कारण पशु को योनि में जलन महसूस होती है एवं पशु बार-बार पेशाब करता है। ऐसे पशु को भी डॉक्टरी सहायता की आवश्यकता होती है।

4. हारमोन असंतुलन

पशुओं के शरीर में डिम्बग्रन्थि एवं मस्तिष्क की ग्रन्थियों से हारमोन उत्पन्न होते हैं जिसके कारण मादा पशु गर्मी के लक्षण दिखाता है लेकिन पशुओं में हारमोन की कमी के कारण निम्न समस्याएं होती हैं :-

अ) गर्मी के लक्षण न दिखना या गूंगा आमा

कुछ पशु इस्ट्रोजन अथवा एल.एच.हारमोन का स्तर कम होने पर रम्भाते नहीं है एवं गर्मी में आने के बाद भी लक्षण प्रदर्शित नहीं करते। ऐसे पशुओं का विशेष ध्यान रखें तथा गर्मी के लक्षणों पर ध्यान दें या बधिया सांड का प्रयोग करें।

ब) पशु का फिरना

एक अच्छे डेयरी फार्म में फिरने वाले पशुओं की संख्या 8-10 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होनी चाहिएं। एल.एच. हारमोन के कम स्तर के कारण अण्डाशय से अण्डा या डिम्ब देर से निकलता है तथा गर्भाधान प्रक्रिया का ठीक से तालमेल न हो पाने के कारण पशु गाभिन नहीं होता।

स) डिम्ब ग्रन्थी से अण्डे का न बनना

मादा पशुओं में डिम्बग्रन्थी से आवश्यक हारमोन्स का स्त्राव होता है परन्तु कभी-कभी डिम्ब ग्रन्थी के पूर्ण विकसित न होने के कारण हारमोन्स का नियमित स्त्राव नहीं हो पाता जिस कारण पशुओं का प्रजनन चक्र अनियमित हो जाता है। परिणामस्वरूप डिम्बग्रन्थि में अण्डे का निर्माण नहीं हो पाता।

द) डिम्ब ग्रन्थि पर गांठ या सिस्ट होना

अण्डोत्सर्ग (ओबूलेशन) से पहले एल.एच. हारमोन का स्त्राव नहीं निकलने के कारण डिम्बग्रन्थि पर गांठ बन जाती है। फॉलिक्यूलर सिस्ट हारमोन (इस्ट्रोजन) के प्रभाव के कारण पशु लम्बे समय तक गर्मी के लक्षण प्रदर्शित करते हैं तथा ल्यूटियल सिस्ट (प्रोजेस्ट्रॉन हारमोन) के कम स्तर के प्रभाव के कारण मादा पशु लम्बे समय तक गर्मी में न आने के लक्षण प्रदर्शित करते हैं।

5. अन्य कारण

क) जेर का न गिरना

जिन पशुओं में ब्याने के बाद गर्भाशय में जेर फंसी रह जाती है उन पशुओं में गर्भाशय पूर्वावस्था में नहीं हो पाता तथा पशु ठीक समय पर गर्मी में नही आ पाता जिससे उसके दो ब्यांतों का अन्तर बढ़ जाता है। यदि पशु 12-18 घंटे तक जेर न डालें तो चिकित्सक की राय लेनी चाहिए।

ख) मौसम

अधिक गर्मी या अधिक सर्दी भी पशु के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। अत: पशु को अधिक गर्मी या सर्दी से बचाकर रखना चाहिए।

गर्भाधान का उचित समय

मादा पशु जब गर्मी में आती है तब उसे बांध कर रखें ताकि उसे खराब नस्ल के सांड गर्भित न कर सकें। इसके अलावा उन्हें विभिन्न बीमारियों जैसे ब्रूसेलोसिस, ट्राइकोमोनिएसिस आदि का भी डर रहता है। पशु के गर्मी में आने के 12 घंटे बाद गर्भाधान कराने से गाभिन होने की सम्भावना सबसे अधिक होती है। अत: यदि प्रात:काल में गर्मी का पता लगे तो मादा पशु को उसी दिन सांयकाल में गर्भाधान करवायें। पशुओं में ऋतुकाल 18-24 घंटे तक होता है। अत: पशुपालक को ऋतुकाल कब प्रारम्भ हुआ इसका ध्यान रखना चाहिए। तभी वह सही समय पर गर्भाधान करवा सकेगा। सही समय पर गर्भाधान न करवाना गर्भाधान की विफलता का विशेषकर कृत्रिम गर्भाधान की विफलता के प्रमुख कारणों में से एक है। अगर मादा पशु ब्याने के एक महीने के अन्दर गर्मी में आए तो भी उसका गर्भाधान न करायें। अगर दुधारू पशु 90 दिन तक गर्मी में न आए तो उसकी जांच करवानी चाहिए। गर्मी के लक्षणों की सही पहचान तथा गर्भाधान के उचित समय को ध्यान में रखकर गायों में 12-13 महीने तथा भैंसों में 14-15 महीने के अन्तर पर नियमित रूप से बच्चा प्राप्त किया जा सकता हैं।

गर्भाधान के तरीके

गर्भाधान के दो तरीके हैं - प्राकृतिक गर्भाधान एवं कृत्रिम गर्भाधान। प्राकृतिक गर्भाधान में गर्मी में आयी हुई मादा पशु पर सांड को चढ़ाकर (मैथुन द्वारा) गर्भाधान कराया जाता है, लेकिन इस विधि में उत्तम नस्ल के बीमारी रहित सांडों का ही प्रयोग करना चाहिए। घटिया एवं बगैर रिकार्ड वाले सांडों का प्रयोग करने से आगे भी घटिया नस्ल की सन्तान ही उत्पन्न होगी। प्राकृतिक गर्भाधान के लिए अच्छे सांड किसी सरकारी फार्म या कृषि विश्वविद्यालय से ही खरीदने चाहिएं। इस विधि में एक सांड से सालभर में 60-80 गायों को ही गर्भाधान कराया जा सकता है।

कृत्रिम गर्भाधान

कृत्रिम गर्भाधान पशुओं में प्रजनन की एक आधुनिक एवं वैज्ञानिक विधि है। इस विधि में उन्नत नस्ल के स्वस्थ एवं परीक्षित सांडों के वीर्य को कृत्रिम योनि द्वारा एकत्र करके परीक्षण करने के बाद एक खास किस्म के घोल से

गर्भधारण न करने के कुछ कारण

वातावरण	अण्डाशय की खराबी	बच्चादानी या गर्भाशय
- अनियमित ऋतुकाल	- अविकसित प्रजनन अंग	- गर्भाशय में मवाद
- पशु का दूध देने का स्तर	- सिस्टिक ओवरी	- कारपस ल्यूटियिम की लगातार उपस्थिति
- असन्तुलित आहार	- जुड़वापन का अभाव	- ममीफिकेशन

पतला करके गर्मी में आए मादा पशु के गर्भाशय में उचित समय पर एवं उचित स्थान पर स्वच्छतापूर्ण ढ़ंग से रखा जाता है। सांड के एक समय में स्खलित वीर्य में 10-15 करोड़ शुक्राणु प्रति मिलीलीटर होते हैं जबकि सफल गर्भाधान के लिए लगभग 10 लाख के करीब जीवित एवं स्वस्थ शुक्राणुओं का योनि में प्रवेश ही काफी होता है। अतः एक बार के स्खलित वीर्य में लगभग 150-200 गायों को गर्भित करने की क्षमता होती है। इसके लिए स्खलित वीर्य को कृत्रिम योनि (जिसका तापमान 42-45^{0} सेन्टीग्रेड होता है) में एकत्र करके परीक्षण किया जाता है तथा इस वीर्य को पतला करके आयतन बढ़ा लेते हैं। इसके लिए विशेष घोल की जरूरत होती है। जैसे साइट्रेट बफर, ट्रिस बफर, ट्रेस बफर आदि। इन रासायनिक घोलों में वीर्य की तरह ही शुक्राणुओं को सुरक्षित व पोषक तत्व प्रदान करने की क्षमता होती है। रोगाणुओं से बचाव के लिए इसमें एन्टीबायोटिक दवाएं मिलाते हैं। इसके बाद इस पतले किये वीर्य को 0.5 या 0.25 मि.ली. की क्षमता वाली पॉलीविनायल नलिकाएं जिन्हें 'वीर्य स्ट्रा' कहते हैं, में भरकर हिमीकृत प्रक्रिया में डाल देते हैं। हिमीकृत वीर्य को तरल नाइट्रोजन, जिसका तापमान -196^{0} सें.ग्रेड होता है, में रख लेते हैं। इस तापमान पर वीर्य को वर्षों तक सुरक्षित रख सकते हैं तथा उत्तम नस्ल के सांड अपनी मृत्यु के पश्चात् भी हिमीकृत वीर्य के माध्यम से पिता की भूमिका निभा सकते हैं।

हिमीकृत वीर्य को प्रयोग करने से पहले उसे तरल नाइट्रोजन के कन्टेनर से निकालकर 37-40^{0} सें.ग्रेड तापमान वाले गर्म पानी में डाल देते हैं। इस प्रक्रिया को 'थाइंग' कहते हैं तथा कृत्रिम गर्भाधान से गर्मी में आयी मादा के गर्भाशय में रख देते हैं। इस कार्य के लिए 'ए.आई.गन' व 'शीथ' का प्रयोग करते हैं।

हिमीकृत वीर्य कन्टेनर

कीटाणुरहित ए.आई.गन व शीथ

कृत्रिम गर्भाधान में सावधनियां

1. 'थाइंग' व गर्भाधान के बीच 15 मिनट से ज्यादा का समय न लगे।
2. 'थाइंग' सही तापमान पर करनी चाहिए।
3. गर्भाधान के समय 'स्ट्रा' पर सीधी धूप न लगे।

4. गर्भाधान का समय व वीर्य रखने का गर्भाशय में स्थान उचित हो।
5. गर्भाधान केवल प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा उचित समय पर एवं स्वच्छ वातावरण में ही करवायें।
6. 'ए.आई.गन' व 'शीथ' पूर्ण रूप से कीटाणुरहित हो वरना यह गर्भाशय में बीमारी का कारण बन सकती है।
7. कन्टेनर में तरल नाइट्रोजन की मात्रा पूरी रखे तथा इसका कम से कम स्तर 4 इंच का रहना चाहिए।
8. कृत्रिम गर्भाधान से अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए मादा पशु को दो बार (6 घंटे के अंतराल पर) गर्भित करवायें।

गर्भ परीक्षण

कृत्रिम गर्भाधान या प्राकृतिक रूप से गर्भाधान कराने मात्र से ही यह विश्वास नहीं करना चाहिए कि पशु गाभिन हो गया है। कई बार मादा पशु बीमारियों से ग्रसित होने, कृत्रिम गर्भाधान की कमी से, उचित समय पर गर्भाधान न कराने आदि से गाभिन नहीं हो पाता और दोबारा गर्मी में भी नहीं आता। अतः गर्भाधान के ढ़ाई-तीन महीने बाद कुशल चिकित्सक से गर्भ परीक्षण करवाना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि पशु गाभिन हुआ है या नहीं। यदि गाभिन है तो उसे पौष्टिक एवं सन्तुलित आहार देना चाहिए और यदि गाभिन नहीं है तो कारणों का निवारण कर पुनः गर्मी में आने पर गर्भाधान करवाना चाहिए। इससे एक तो आर्थिक हानि कम होती है और पशुपालक निश्चित तौर पर पता लगा सकता है कि पशु गाभिन है या नहीं।

गर्भकाल व प्रसव

गर्भधारण से लेकर बच्चे के जन्म देने तक की अवधि को गर्भकाल कहते हैं। यह गायों में औसतन 9 महीने 9 दिन (281-290 दिन) तथा भैंसों में 10 महीने 10 दिन (300-310 दिन) तक होता है। गर्भधारण के बाद बच्चों को जन्म देना ही प्रसव कहलाता है। गर्भाधान के बाद अगर कोई पशु गर्मी में न आए तो उसे 90 दिन के बाद जांच करवा लें। कई बार पशु गभिन भी नहीं होता तथा किसी कारण से गर्मी में भी नहीं आता। अतः जाच कराने पर पशुपालक निश्चिंत हो जाता है।

पशु प्रजनन की विधियां

1. ग्रेडिंग अप/उन्नयन विधि

कम उत्पादन वाली मादाओं का अच्छी नस्ल के सांड द्वारा तथा ग्रेडिड मादा का भी उसी नस्ल के श्रेष्ठ सांड के साथ पीढ़ी दर पीढ़ी समागम कराना पड़ता है। इसके फलस्वरूप पांच-छः पीढ़ियों के बाद मिश्रित नस्ल के पशु उन्नत नस्ल में परिवर्तित हो जाते हैं। इसके लिए उस क्षेत्र की देसी नस्ल के उत्तम सांडों को मिश्रित नस्लों की मादाओं के साथ मिलाया जाता है या कृत्रिम गर्भाधान करते हैं तथा कई पीढ़ी तक यह प्रक्रिया दोहराई जाती है। इस विधि में प्रयुक्त सांड किसी राजकीय फार्म या कृषि विश्वविद्यालय से ही खरीदें या हिमीकृत वीर्य भी इन्हीं संस्थानों से लें। देसी गायों में नस्ल सुधार के लिए यह विधि सबसे उत्तम है तथा देसी गायों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। लेकिन इस विधि में उन्नत नस्ल के पशु तैयार करने में काफी समय लग सकता है।

साहीवाल सांड

2. सेलेक्शन या चयन विधि

मुर्रा सांड

इस विधि में एक ही नस्ल के उत्तम सांडों का प्रयोग उसी नस्ल की श्रेष्ठ मादाओं को गर्भित कराने के लिए किया जाता है। सांडों का चयन शुरू में उनकी माता, दादी एवं अन्य सम्बन्धियों के आधार पर करते हैं। बाद में सांडों का चयन उनकी बेटियों की उत्पादन क्षमता (संतति परीक्षण) पर किया जाता है। इसके लिए पशुओं का रिकार्ड रखना आवश्यक है ताकि नर व मादा का चुनाव किया जा सके। मादा का चुनाव उसके दूध उत्पादन, प्रथम ब्यांत की उम्र, दो ब्यांतों के बीच का अन्तर, दूध उत्पादन अवधि आदि गुणों के आधार पर करते हैं। इस विधि में दूध उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए काफी लम्बा समय लगता है। सांडों के चुनाव के लिए संतति परीक्षण विधि ही श्रेष्ठ है।

पशु–आहार

पशु का स्वास्थ्य तथा उत्पादन मुख्यतया उसको दिये जाने वाले आहार की मात्रा व गुणवत्ता पर निर्भर करता है। केवल सन्तुलित आहार से ही अधिकतम दुग्ध उत्पादन लिया जा सकता है। दुग्ध उत्पादन पर कुल लागत का 70–75 प्रतिशत खर्च आता है इसलिए दुग्ध उत्पादक का लाभ व हानि पशुओं को दी जाने वाली खुराक पर निर्भर करता है। पशु को हमारे देश में हरा चारा, प्राकृतिक घास, चारे वाले वृक्षों के नाजुक भाग, कृषि उद्योगों के सह–उत्पाद व फसल अवशेष ही आमतौर पर खिलाये जाते हैं। किसान पशुओं को आमतौर पर एक ही तरह का चारा देते हैं जिससे पशु को सन्तुलित आहार नहीं मिल पाता और पशु का स्वास्थ्य तथा उत्पादन गिर जाता है। भारतवर्ष में विश्व के 2 प्रतिशत क्षेत्रफल पर दुनिया के लगभग 15 प्रतिशत पशु पाले जाते हैं और देश में कुल आवश्यकता का केवल 60 प्रतिशत पशु आहार ही उपलब्ध है। फसलों के विविधिकरण, शहरीकरण, औद्योगीकरण व बढ़ती हुई आबादी के कारण चारे के अधीन क्षेत्रफल निरन्तर घटता जा रहा है। इसलिए भविष्य में चारे की उपलब्धता और भी कम होने की प्रबल सम्भावना है। ऐसी हालत में पशुओं को वैज्ञानिक ढ़ंग से खुराक देने का महत्व और बढ़ गया है ताकि किसान लाभप्रद उत्पादन कर सकें। एक सर्वेक्षण के मुताबिक चारे से सम्बन्धित निम्नलिखित समस्याएं देखी गई हैं।

- जरूरत से अधिक खिलाना।
- जरूरत से कम खिलाना।
- असंतुलित आहार देना।
- खनिज तत्वों की कमी।
- अभाव वाले समय के लिए चारे का परिरक्षण न करना।

उपर्युक्त बातों को देखते हुए पशु को प्रजनन सम्बन्धी अनेक समस्याओं जैसे गर्मी में न आना, गर्भधारण न करना या फिरना, गर्भपात होना, फूल दिखाना, हड्डियों का मुड़ना व कमजोर होना, आंखों सम्बन्धी विकार होना आदि का सामना करना पड़ रहा है। पशुओं को वैज्ञानिक ढंग से खुराक देने के लिए उनके पाचन तन्त्र के बारे में जानकारी होना अति आवश्यक है। पशु के पाचन तंत्र में मुंह, आहार नली, आमाशय, छोटी आँत, बड़ी आँत व मलाशय होते हैं। इसके अतिरिक्त दांत, जीभ, लार ग्रन्थि, यकृत, अग्नाशय भी पाचन में मदद करते हैं।

पशुओं के लिए आवश्यक पोषक तत्व व उनके कार्य

जुगाली करने वाले पशु घास–फूस, वृक्षों के पत्ते व टहनियां, फसल अवशेष (जो मनुष्यों के द्वारा नहीं खाये जाते), आदि खाकर दूध एवं मांस में परिवर्तित करने की क्षमता रखते हैं जो मनुष्य के लिए एक पोष्टिक आहार है। इसलिए इनका अस्तित्व बना हुआ है। ये घास–फूस अन्यथा व्यर्थ जाते हैं। पशुओं के लिए आवश्यक मुख्य पोषक तत्व निम्नलिखित हैं:

1. कार्बोहाइड्रेट (शर्करा)

पशुओं की खुराक में कार्बोहाइड्रेट सैलूलोज व स्टार्च के रूप में मुख्यतया पाये जाते हैं। दूध देने वाले पशुओं में कार्बोहाइड्रेट पशुओं को ऊर्जा प्रदान करने, वसा व प्रोटीन को पचाने में मदद करने, दूध में वसा की मात्रा बढ़ाने का कार्य करते हैं। कार्बोहाइड्रेट मुख्यत: अनाज व चारे में पाये जाते हैं।

2. वसा

वसा पशुओं में ऊर्जा प्रदान करने का मुख्य स्रोत है तथा यह कार्बोहाइड्रेट व प्रोटीन से ढ़ाई गुणा ज्यादा ताकत देने वाला है। यह पशु के मुख्य अंगों को सुरक्षित रखने में मदद करता है तथा शरीर के तापमान को नियंत्रित रखता है। यह पशुओं में पाचन क्षमता को भी बढ़ाता है। यह आमाशय के अन्दर से कार्बोहाइड्रेट व प्रोटीन की अपेक्षा ज्यादा समय में गुजरता है तथा पशुओं की भूख को रोकता है।

3. प्रोटीन

प्रोटीन पशुओं को ऊर्जा प्रदान करता है। कोशिका व उत्तक बनाने में प्रोटीन का मुख्य योगदान है। प्रोटीन दालों व उनके छिलकों में, दाल वाली फसलों का चारा, तेल वाली फसलों की खली में पायी जाती है। छोटे बच्चों की शारीरिक वृद्धि, दूध उत्पादन व बीमारियों से बचाव के लिए प्रोटीन एक महत्वपूर्ण अवयव है।

4. खनिज तत्व

पशुओं को आमतौर पर 15 खनिज तत्वों की आवश्यकता होती है। इनमें से कुछ तत्व कम मात्रा में तथा कुछ तत्वों की अधिक मात्रा में जरूरत होती है। Ca, P, Na, Cl, Mg, K की पशुओं को अधिक मात्रा में जरूरत होती है जबकि Fe, Cu,

Mo, Mn, Zn. Co, I , Se की कम मात्रा में आवश्यकता होती है। खनिज तत्व शरीर के लिए बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। पशुओं की हड्डी व दांत खनिज तत्वों की बनी है। ये बाल, खुर, सींग बनाते हैं। रक्त कोशिकाओं में इनका महत्वपूर्ण योगदान होता है। खनिज तत्व पशुओं में रसाकर्षक दबाव को भी नियन्त्रित करते हैं तथा दूध की मात्रा व गुणवत्ता को भी बढ़ाते हैं एवं पशुओं को अनेक बीमारियों जैसे रिकेट्स, रस्सी चबाना, मिट्टी खाना आदि से भी सुरक्षा प्रदान करते हैं।

5. विटामिन

जुगाली करने वाले पशुओं के आमाश्य में सूक्ष्मजीवों द्वारा अधिकतर विटामिनों (बी-कॉम्पलैक्स, विटामिन -के) को बनाने की क्षमता होती है तथा विटामिन "सी" शरीर के उत्तकों द्वारा बनाया जाता है। पशु को केवल वसा घुलनशील विटामिन ए, डी व ई को चारे के रूप में देने की आवश्यकता होती है। विटामिनों की कमी से रतौंधी, आंखों से लगातार पानी बहना, खांसी, दस्त, निमोनिया, शरीर के अंगों का असन्तुलन, पूर्णतया अन्धापन, बीमारियों से लड़ने की क्षमता में कमी, मुड़ी हुई हड्डियां व उनका टूटना, जोड़ों की सूजन, कुबड़ापन, खाल कठोर होना, गर्भपात, सफेद उत्तक बीमारी इत्यादि की समस्या हो जाती है। जो पशु हरा चारा खाते हैं उनमें विटामिन ए की कमी नहीं होती। जो पशु बाहर धूप में रहते हैं या धूप में सुखाया हुआ चारा खाते हैं उनको पर्याप्त मात्रा में विटामिन डी. मिल जाता है।

6. पानी

पशुओं तथा जीव-जन्तुओं के लिए अन्य पोषक तत्वों से ज्यादा महत्वपूर्ण पानी होता है। यदि शरीर में 100 प्रतिशत वसा तथा 50 प्रतिशत प्रोटीन कम हो जाती है तो भी पशु जीवित रह सकता है लेकिन शरीर में केवल 10 प्रतिशत पानी की कमी से ही पशु की मृत्यु हो सकती है। पशुओं को पानी की आवश्यकता उनके शरीर के आकार, खाया जाने वाला चारा, मौसम तथा दूध उत्पादन की मात्रा पर निर्भर करती है। पशु की आम आवश्यकता के अलावा एक किलो दूध उत्पादन के लिए गाय-भैंस को 4-5 किलो पानी प्रतिदिन की आवश्यकता होती है। पानी शरीर के लिए कई महत्वपूर्ण कार्य करता है जैसे शरीर की कोशिकाओं की कठोरता व लचीलापन, पशु के शरीर की सभी रासायनिक क्रिया पानी से होती है। पानी पोषक तत्वों को पचाने में भी मदद करता है। पानी से पशुओं के विभिन्न अंगों के जोड़ों में चिकनाहट रहती है व उनकी रगड़ से रक्षा करता है। पानी की सहायता से ही विभिन्न पोषक तत्व शरीर के एक अंग से दूसरे अंग तक आते हैं तथा व्यर्थ पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने में मदद करता है। सर्दी-गर्मी में पशु के शरीर के तापमान को नियंत्रित रखता है। इसलिए पशु को हर समय साफ, स्वच्छ एवं ठंडा पानी ही पिलाया जाना चाहिए। हर समय पानी उपलब्ध करवाने से दूध की मात्रा व गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

उदाहरण 1 : जीवन निर्वाह आहार

वह कम से कम खुराक है जो पशु के जीवन के लिए आवश्यक होती है। लेकिन इससे पशु का वजन कम या ज्यादा नहीं होता। एक वयस्क पशु जिसका वजन 450 किलोग्राम है और उसे 0.28 किलो डी.सी.पी. व 3.37 किलो टी.डी.एन. की आवश्यकता है, उसको गेहूं का भूसा व 14 प्रतिशत डी.सी.पी. व 68 प्रतिशत टी.डी.एन. का पशु आहार कितनी मात्रा में देने होंगे।

	मद	**डी.सी.पी.**	**टी.डी.एन.**
1.	भूसा (5 किलोग्राम) (डी.सी.पी. 0 प्रतिशत, टी.डी.एन. 42 प्रतिशत)	00	2.10
2.	सन्तुलित आहार (2 किलोग्राम) (डी.सी.पी. 14 प्रतिशत, टी.डी.एन. 68 प्रतिशत)	0.280	1.36
	कुल उपलब्धता	0.280	3.460
	सिफारिश	0.280	3.370

उदाहरण 2 :

एक भैंस जिसका वजन 250 किलोग्राम है व 7 महीने की गाभिन है, उसके जीवन निर्वाह व प्रसव के लिए क्रमशः 0.17, 0.14, डी.सी.पी. तथा 2.02 व 0.70 किलोग्राम टी.डी.एन. की आवश्यकता है। उसको सन्तुलित आहार व भूसा कितनी मात्रा में चाहिए।

जरूरत	**डी.सी.पी.**	**टी.डी.एन.**
जीवन निर्वाह	0.17	2.02
गर्भ में पल रहे शिशु के लिए	0.14	0.70
कुल	**0.31**	**2.72**

तालिका 1. विभिन्न पशु आहारों/चारे में उपलब्ध पोषक तत्वों की प्रतिशत मात्रा

फसल	डी.सी.पी०	टी.डी.एन.
चारा		
बाजरा	1.1	14.8
मक्का	1.2	17.0
जई	2.0	16.7
बरसीम	2.8	12.0
ज्वार	1.1	16.0
रिजका	3.0	12.0
नेपियर घास	1.0	13.0
पैरा घास	1.4	13.0
गुईनिया घास	1.1	13.0
लोबिया	2.6	12.1
सूबबूल	4.0	17.7
क्लस्टर बीन	1.4	16.3
भूसा	–	42.0
अनाज		
जौ	7.1	75.0
बाजरा	4.5	50.0
मक्का	6.0	72.0
जई	7.0	70.0
ज्वार	6.0	70.0
गेहूं का चौकर	9.0	65.0
राईस ब्रान	7.0	63.5
बिनौले की खली	28.0	75.0
सरसों की खली	30.0	70.0
मूंगफली की खली	40.0	70.0
मूंगफली एक्सपैलर	32.0	75.0
सोयाबीन की खली	45.0	75.0
महुआ केक	7.0	75.0
कोकम केक	8.5	63.0

एक डेयरी फार्म पर अलग-अलग आयु व वजन के पशु पाए जाते हैं। पशुओं की खुराक उनकी आयु, वजन, दुग्ध-उत्पादन, गर्भ-अवस्था पर निर्भर करती है। इसलिए अलग-अलग किस्म के पशुओं की खुराक भिन्न होती है। पशुओं को उनकी भौतिक अवस्था के हिसाब से ही खुराक देनी चाहिए।

मद	डी.सी.पी.	टी.डी.एन.
1. भूसा (4 किलोग्राम)	00	1.68
2. सन्तुलित आहार/दाना (2.5 किलोग्राम) (1.25 जीवन निर्वाह, 1.25 गर्भ के लिए)	0.35	1.70
उपलब्धता	035	3.38
सिफारिश	0.31	2.72

उदाहरण 3 :

एक पशु जिसका वजन 450 किलोग्राम है और वह 4 प्रतिशत वसा का 10 किलो दूध देती है, उसे जीवन निर्वाह तथा उत्पादन के लिए क्रमशः डी.सी.पी. 0.28, 0.45 व 3.37, 3.16 किलोग्राम टी.डी.एन. की आवश्यकता है। उसके लिए कितना राशन चाहिए।

जरूरत	डी.सी.पी.	टी.डी.एन.
जीवन निर्वाह	0.28	3.37
दूध उत्पादन	0.45	3.16
कुल	**0.73**	**6.53**

मद	डी.सी.पी.	टी.डी.एन.
1. भूसा (7 किलोग्राम)	00	2.94
2. दाना (5 किलोग्राम)	0.70	3.40
उपलब्धता	0.70	6.34
सिफारिश	0.70	6.53

पशु-आहार सम्बन्धी महत्वपूर्ण बातें

- अलग-अलग किस्म के पशुओं की खुराक अलग होती है। इसलिए छोटे-बड़े कटड़े-कटड़ी, गाभिन झोटियां, दूध वाली भैंस, शुष्क भैंस तथा सांड इत्यादि को अलग बांधकर खिलाना चाहिए।
- पशु को जरूरत से ज्यादा और कम खिलाना दोनो हानिकारक होते हैं। ज्यादा खिलाने से आर्थिक नुकसान होता है और कम खिलाने से छोटे पशुओं का विकास और दूध वाले पशु का उत्पादन घट जाता है।
- पशु खुराक पर दुग्ध उत्पादन का 70-75 प्रतिशत खर्चा आता है, इसलिए उत्पादन लागत को कम करने के लिए हरे चारे का ज्यादा प्रयोग करें।
- छोटी कटड़ी और बिना दूध देने वाली गाभिन भैंस को भी उचित खुराक देनी चाहिए। इन पशुओं को हरे चारे और थोड़े दाने से अच्छी तरह पाला जा सकता है।

उदाहरण 4 :

अ. 250 किलो वजन के पशु के लिए प्रतिदिन जीवन निर्वाह राशन

क्रमांक	आहार/चारा	चारे का वजन (किलो)	डी.सी.पी. (किलो)	टी.डी.एन. (किलो)
1.	दलहनी हरा चारा	6-8	0.17	0.77
2.	भूसा	4.5	0.0	2.00
अथवा				
1.	दाना	1.0	0.16	0.60
2.	भूसा	5.0	0.0	2.30

उदाहरण 5 :

ब. 200 किलो वजन की बढ़ने वाली कटड़ी का प्रतिदिन जीवन निर्वाह राशन

1.	दलहनी हरा चारा	18.0	0.50	2.25
2.	भूसा	2.0	0.0	0.95
	अथवा			
1.	दाना	2.5	0.40	1.50
2.	भूसा	4.4	0.0	2.10

उदाहरण 6 :

स. 400 किलो वजन व 5 प्रतिशत वसा के 5 किलो दूध वाले पशु का प्रतिदिन राशन

1.	दलहनी हरा चारा	10.0	0.28	1.2
2.	हरा चारा	20.0	0.24	3.2
3.	भूसा	4.0	0.0	1.7
	अथवा			
1.	दाना	3.5	0.52	12.2
2.	भूसा	7.0	0.0	13.0

उदाहरण 7 :

द. 5 प्रतिशत वसा का 10 किलो दूध देने वाले पशु का प्रतिदिन राशन

1.	दलहनी हरा चारा	15.0	0.42	1.8
2.	हरा चारा	25.0	0.29	4.0
3.	भूसा	2.0	0.0	0.8
4.	दाना	1.0	0.14	0.6
	अथवा			
1.	दाना	6.0	1.20	2.4
2.	भूसा	12.0	-	4.8

तालिका 2. वयस्क पशु की प्रतिदिन जीवन निर्वाह के लिए पाचक तत्त्वों की आवश्यकता (किलो)

वजन (किलो)	अपक्व पाचक प्रोटीन	कुल पाचक तत्व
200	0.128	1.72
300	0.203	2.55
400	0.273	3.34
500	0.338	4.04
600	0.399	4.80
700	0.458	5.57

तालिका 3. बढ़ने वाले पशुओं की वजनानुसार प्रतिदिन पाचक तत्वों की आवश्यकता (किलो)

वजन	श्रेणी-1		श्रेणी-2		श्रेणी-3	
वयस्क का वजन	500 किलो		375 किलो		250 किलो	
50	0.16	0.6	0.12	0.6	0.08	0.4
100	0.28	1.8	0.21	1.4	0.14	0.9
150	0.36	2.6	0.27	1.9	0.18	1.3
200	0.42	3.2	0.32	2.4	0.21	1.6
250	0.46	3.6	0.35	2.7	0.23	1.8
300	0.50	4.1	0.37	3.0		
350	0.53	4.5	0.40	3.4		
400	0.56	4.0	0.42	3.7		
450	0.59	5.4				
500	0.62	5.7				

तालिका 4. वसा प्रतिशतता अनुसार एक लीटर दूध के पाचक तत्त्वों की आवश्यकता (किलो)

दूध की वसा	अपक्व पाचक प्रोटीन	कुल पाचक तत्व
3.0	0.040	0.27
4.0	0.045	0.32
5.0	0.051	0.36
6.0	0.057	0.41
7.0	0.067	0.46

- केवल हरा चारा खिलाकर भैंसों से 5-7 किलो तक दूध उत्पादन लिया जा सकता है। अधिक दूध देने वाले पशुओं को सन्तुलित आहार देना अति आवश्यक है । इसके लिए सरल नियम है। एक किलो दाना प्रति 2-2.5 किलोग्राम दूध वाली गाय को और 2.5-3 किलोग्राम भैंस को खिलाएं।
- गाभिन गाय/भैंस को गर्भावस्था के आखिरी तीन महीनों में पशु की नियमित खुराक के अतिरिक्त एक किलो सन्तुलित आहार पेट में पलने वाले बच्चे के सम्पूर्ण विकास के लिए दें।
- पशुओं को चारा डालने वाली खुरली की नियमित रूप से सफाई करें ताकि उसमें फफूंद इत्यादि न पनप सके।

- हरे चारे को गंडासे से काट कर खिलाने से पशुओं द्वारा चारे का कम नुकसान होता है तथा पशु को अधिक खुराक मिलती है लेकिन चारे को ज्यादा बारीक मत काटें।
- कड़वा, गला सड़ा, मिट्‌टी मिला हुआ व फफूंदी लगा चारा न खिलाएं।
- पशुओं को खिलाते समय उनके व्यवहार को जांचते रहें। मारने वाले पशु दूसरे पशुओं को चारा नहीं खाने देते इसलिए उनको अलग बांधकर खिलायें।
- सारा चारा दिन में एक बार मत डालें और इसे दिन में 3-4 बार डालकर खिलायें।
- अगर चारे में परिवर्तन करना पड़े तो एक दम ना करें। परिवर्तन धीरे-धीरे करें ताकि उत्पादन और स्वास्थ्य पर बुरा असर ना पड़े।
- गर्मी के मौसम में एक दिन से ज्यादा प्रयोग का हरा चारा ना काटें।
- हरे चारे को खेत से उस समय काटना चाहिए जब इसमें भरपूर मात्रा में पोष्टिक तत्त्व मौजूद हों। कम उम्र का चारा पशुओं के लिए खतरनाक हो सकता है और ज्यादा पका हुआ कम पौष्टिक होता है।

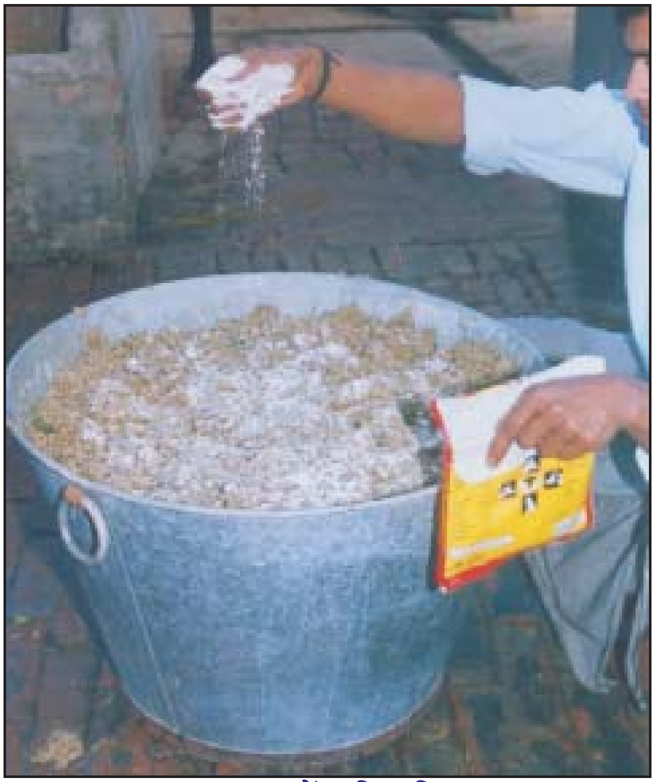

पशु आहार में खनिज मिश्रण

हरे चारे की कटाई

- ज्यादा उत्पादन के समय में जरूरत से फालतू चारे को उचित भौतिक अवस्था में काटकर अभाव वाले समय के लिए साइलेज अथवा 'हे' बनाकर भण्डारण करें।
- पशु को खिलाने से पहले भूसे में कांच, नट-बोल्ट, लोहे की कील आदि अच्छी तरह जांच लें।
- दाल व अनाज वाली फसलों के चारे को मिलाकर खिलाएं ताकि पशु को ऊर्जा व प्रोटीन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो सकें।
- रबी के मौसम में पशुओं को बरसीम के साथ अनाज वाली फसलें जैसे ज्वार, बाजरा, गेहूं, जौ, जई का भूसा या सह-उत्पाद खिलाएं।
- खरीफ के मौसम में ज्वार के साथ प्रोटीन एवं तेल देने वाली फसलों की खल या दाल वाली फसलों का चूरा दें।
- कुल खुराक का 2/3 हिस्सा हरे चारे से व 1/3 दाने से पूरा करें।
- बिनौला, सरसों व अन्य तेल वाली फसलों के साबुत दाने खिलाने की बजाए उनकी खल व सह उत्पाद खिलाने से दुग्ध उत्पादन लागत कम आती है।
- पशुओं को खनिज तत्त्वों की कमी से होने वाली बीमारियों एवं नुकसान से बचाने के लिए 30-50 ग्राम खनिज मिश्रण एवं 25-30 ग्राम साधारण नमक अवश्य खिलायें।
- चारे की फसल के लिए खेतों में देसी खाद अवश्य डालें ताकि चारे में सूक्ष्म खनिज तत्वों की कमी न हो।
- पशुओं के लिए हर समय स्वच्छ व ठंडे पीने के पानी की व्यवस्था जरूर करें ताकि पशु आवश्यकतानुसार पानी पी सके।
- पशु को खिलाने वाली खुराक और दुग्ध उत्पादन का आर्थिक विश्लेषण नियमित रूप से करते रहें।

चारा-उत्पादन

हरा चारा सस्ता व पशुओं का उत्पादन बढ़ाता है। चारे का पोषक-मान उसमें पायी जाने वाले नमी की मात्रा, अंश नाइट्रोजन रहित निष्कर्ष (शर्करा आदि), नाइट्रोजन युक्त पदार्थ, विटामिन, वसा व खनिज तत्वों की चारे में विद्यमानता और उनकी पशु शरीर में उपलब्धता की मात्रा पर निर्भर करता है। हरे चारे में पाच्य क्रूड प्रोटीन व कुल पाच्य पोषक तत्व जो आवश्यक खुराक को निर्धारित करने के लिए जरूरी है, अच्छी मात्रा में उपलब्ध होते हैं। इसलिए दुधारू पशुओं में अधिक उत्पादन लेने के लिए उनकी खुराक का ज्यादा भाग हरे चारे से मिलना जरूरी है। 400 किलो शारीरिक वजन वाले पशु को प्रतिदिन लगभग 35-40 किलो हरे चारे की आवश्यकता होती है। यानि 150 क्विंटल चारा प्रति वर्ष। अतः एक एकड़ से 4 पशुओं के लिए हरे चारे की पूर्ति आसानी से हो जाती है।

पशु आहार में हरा चारा पर्याप्त मात्रा में प्रतिदिन देने से पशुओं का स्वास्थ्य ठीक रहता है, दूध उत्पादन में वृद्धि होती है तथा जनन सम्बन्धी समस्याओं से छुटकारा मिल सकता है। यही कारण है कि पशुओं के शारीरिक विकास और प्रजनन अंगों को परिपक्वता के लिए हरे चारे की पशु आहार में अधिकता अति आवश्यक है। हरे चारे की विशेषताएं (जो सूखे चारे या दाने में नहीं होती) निम्नलिखित हैं :-

1. हरे चारे में लगभग 80 प्रतिशत नाइट्रोजन प्रोटीन होता है जो रूमन के जीवाणुओं का मुख्य भोजन है।
2. हरे चारे में कैरोटीन, विटामिन ए, डी, ई और बी पाया जाता है।
3. हरे चारे का असंरचनात्मक कार्बोहाइड्रेट-ग्लूकोज, फ्रूक्टोज, सुक्रोज, स्टार्च आदि पानी में अति घुलनशील व सुपाच्य होते हैं।
4. हरे चारे में पशुओं के लिए आवश्यक वसीय अम्ल भी पर्याप्त होता है।

साल भर हरा चारा कैसे उगायें

हमारे देश में इस समय लगभग 4 प्रतिशत कृषि भूमि पर चारे की खेती होती है जोकि हमारे पशुधन को देखते हुए बहुत कम है। दाने की कम उपलब्धता के साथ-साथ हरे चारे के अभाव के कारण ही हमारे पशुओं का दूध उत्पादन कम है। अतः यह आवश्यक है कि हम चारे वाली फसलों के ऐसे चक्र अपनायें जिनसे साल भर हरा चारा मिलता रहें।

साल भर चारा उत्पादन के लिए ध्यान रखें कि रबी, खरीफ और जायद तीनो मौसमों में चारा उगाया जाए। हर मौसम में कोई ना कोई फलीदार चारे की फसल लगाई जाए ताकि हरे चारे में कार्बोहाइड्रेट व प्रोटीन की पर्याप्त मात्रा मिलने के साथ-साथ भूमि की उर्वरा शक्ति भी बनी रहे। हरे चारे की अधिकतम पैदावार देने वाली उन्नत किस्में ही उगायें। बुवाई उचित समय पर और सही तरीके से करें। चारा फसलों में उचित व पर्याप्त मात्रा में खाद-उर्वरकों का प्रयोग करें व सिंचाई की व्यवस्था करें।

बरसीम

जून-जुलाई माह में लगाये गए मक्का, ज्वार, लोबिया व ग्वार से नवम्बर-दिसम्बर तक चारा मिल जाता है। अतः रबी मौसम का चारा ऐसे समय में लगायें कि हमें चारे की कमी न हो। इस मौसम का चारा सितम्बर के आखिर से मध्य नवम्बर तक लगायें। रबी मौसम में बरसीम, जई व रिजका लगायें। सही समय पर इन फसलों को लगाने से अप्रैल तक हरा चारा मिलता रहेगा। गर्मियों में हरा चारा उपलब्ध करवाने के लिए जायद में मक्का व लोबिया की बुवाई की जा सकती है। इनकी बुवाई का उपयुक्त समय फरवरी-मार्च है। ज्वार व बाजरा को मार्च के अन्त से अप्रैल तक लगायें ताकि जुलाई तक हरा चारा मिलता रहे।

जई

पशुओं की संख्या अनुसार क्षेत्र में हरे चारे की काश्त करें। खेत के चार हिस्से करें। एक चौथाई भूमि में बहुवर्षीय चारे की फसल लगायें। उसमें हाथी घास + रिजका उत्तम फसलें हैं। गर्मी व बरसात में हाथी घास से चारा मिलेगा तथा रबी मौसम में रिकजा से। इस चक्र से उस समय भी चारा मिलेगा जब हमें अन्य फसलों से चारा नहीं मिल रहा है।

जई

साल भर हरा चारा लेने के लिए फसल चक्र निम्नलिखित है -

1. नेपियर बाजरा + संकर हाथी घास + लोबिया – बरसीम + सरसों।
2. मक्का + लोबिया, ज्वार + लोबिया, जई।
3. सुडान घास – बरसीम + सरसों।
4. ज्वार – बरसीम + सरसों।
5. ज्वार + ग्वार – जई – मक्का + लोबिया।
6. बाजरा व रिजका।

चारा फसलों की उन्नत किस्में

विभिन्न चारा फसलों की सिफारिश की गई उन्नत किस्में इस प्रकार हैं :-

ज्वार : जे.एस. 20, एच.सी. 136, एच.सी. 171, एच.सी.260, स्वीट सुडान घास-59-3

बाजरा : संकर किस्मों की दूसरी पीढ़ी

जई : हरियाणा जई (एच.एफ.ओ. 114), ओ.एस. 6, ओ.एस. 7

ग्वार : एफ.एस. 277, एच.एफ.जी. 119, एच.एफ.जी. 156

मक्का : अफ्रीकन टाल या कोई भी संकर या मिश्रित मक्का जो पहले दाने के लिए लगाई गई हो एफ.ओ.एस. 1, नं. 10ए एच.एफ.सी. 42-1

बरसीम : मैस्कावी, पूसा जायन्ट

रिजका (लूसर्न) : लूसर्न टी-9

नेपियर घास (संकर हाथी घास) : एन.बी.एच. 21

खरीफ चारे की फसलें

फसल	किस्में	बिजाई का समय	बीज की मात्रा/एकड़	खाद/उर्वरक की मात्रा/एकड़	सिचाईयां	कीट	बीमारियां
ज्वार	JS-20, SSG59-3 HC-260, HC-136 HC-171, HC-308	20 मार्च-18 अप्रैल 25 जून-10 जुलाई	20-24 कि.ग्राम (ज्वार) 10-12 कि.ग्राम (सुडान घास)	20 किलोग्राम नत्रजन	5-6 गर्मियों में 1-3 खरीफ में	तना छेदक 500 मि.ली इण्डोसेल/एकड़	दानों की कांगियारी बीज उपचार 2 ग्राम एमीसान प्रति किलो बीज
मकचरी	उन्नत मकचरी	25 जून-15 जुलाई	16 किलोग्राम	40 कि.ग्रा. नत्रजन 6 कि.ग्राम फास्फोरस	1-3	-	-
बाजरा	हाइब्रिड बाजरे की किस्में	20 मार्च-10 अप्रैल	3-4 किलोग्राम या 2-2.5 कि.ग्राम बाजरा 5 कि.ग्राम लोबिया	20 कि.ग्रा. नत्रजन	2-3	-	-
लोबिया	FOS-I, नं. 10 HFC 42-I, CS88	मार्च से जुलाई मध्य	16-20 कि.ग्राम	10 कि.ग्रा नत्रजन +25 कि.ग्रा फास्फोरस	3-4	जैसिड (तैला) 200 मि.ली मैलाथियान 5 ई.सी.	-
ग्वार	FS-277, HFG-156 HFC 42-I, CS88	अप्रैल से जुलाई मध्य	16-22 कि.ग्राम	8 कि.ग्रा नाइट्रोजन +20 कि.ग्रा फास्फोरस	1-2	जैसिड (तैला) 200 मि.ली मैलाथियान 5 ई.सी.	-
नेपियर बाजरा	NHB-21	मार्च-सितम्बर	11000 टुकड़े 2-3 गांठें वाले	20 टन फार्म यार्ड मैन्योर+12 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति कट	10-15 दिन के अन्तराल पर गर्मियों में, 20 दिन में बंसत ऋतु में	-	

रबी चारे की फसलें

फसल	किस्में	बिजाई का समय	बीज की मात्रा/एकड़	खाद/उर्वरक की मात्रा/एकड़	सिंचाईयां	कीट	बीमारियां
बरसीम	मरकावी, HFB-600	सितम्बर अन्त से अक्तूबर अन्त तक	8–10 किलोग्राम	10 कि.ग्रा. नत्रजन + 28 कि.ग्रा. फास्फोरस	पहली सिंचाई एक सप्ताह बाद उसके बाद 10 से 20 दिन के अंतराल पर	काली चींटी-मिथाईल पैराथियान 2% धूड़े का बुरकाव, टिड्डा (अप्रैल) 400 मिली मैलाथियान 300 ली.पानी में छिड़काव	तना गलन रोग बीज का चुनाव रोग रहित खेत से करना चाहिए
रिजका	T-9	अक्तूबर के अन्तिम सप्ताह से नवम्बर	4–5 कि.ग्राम	10 कि.ग्रा नत्रजन + 40 कि.ग्रा फास्फोरस	पहली सिंचाई एक महीना, बाद में 15–20 दिन के अंतराल पर	–	खुआ-कटाई जारी रखें, रोके नहीं। बीज वाली फसल के लिए डाईथेन M-45, 0.25% के घोल का छिड़काव करें।
जई	HF-114, OS-6	मध्य अक्तूबर से नवम्बर अन्त तक	30–40 कि.ग्राम	48 कि.ग्रा नत्रजन तीन बार में	3–4 सिंचाईयां	–	बन्द कांगियारी-एमिसान 2 ग्राम/कि.ग्राम बीज से उपचार करें। खुली कांगियारी के लिए बैवस्टिन या वीटावैक्स 2 ग्राम/कि.ग्राम से सूखा उपचार करें।
सनजी	FOS-I	सितम्बर अन्त से अक्तूबर अन्त तक	8–10 कि.ग्राम (बिना छिलके का)	16 कि.ग्राम फास्फोरस	2 सिंचाईयां		

चारा-परिरक्षण

दूध उत्पादन पर होने वाले कुल खर्च में पशुओं के आहार पर 70-75 प्रतिशत खर्च आता है। दूध उत्पादन ज्यादातर हरे चारे की उपलब्धता पर निर्भर करता है। परन्तु हरा चारा सारे साल नहीं मिलता व हरे चारे के अभाव वाले महीनों में दूध उत्पादन घट जाता है तथा दाना खिलाने से दूध उत्पादन लागत बढ़ जाती है। ऐसे चारे के अभाव वाले महीनों के लिए साईलेज बनाकर चारे का परिरक्षण किया जा सकता है। हरे चारे के अभाव के समय यह पौष्टिक आहार पशुओं को खिलाकर दूध उत्पादन लागत को कम किया जा सकता है तथा अधिक दूध प्राप्त किया जा सकता है।

1. साईलेज बनाना

साइलेज यानि चारे का अचार बनाकर सुरक्षित रखना। हरे चारे को ऑक्सीजन रहित गड्ढ़ों (साईलों) में भण्डारण व किण्वन करने को साईलेज कहा जाता है। साईलेज बनाते समय बैक्टीरिया हरे चारे में उपलब्ध शर्करा को ऑर्गेनिक अम्ल में बदल देते हैं और चारे की पी.एच. 3.5 से 4.5 तक पहुंच जाती है। ज्यादा अम्ल की वजह से चारे में उपलब्ध कीटाणु मर जाते हैं और चारे को स्वादिष्ट और पोष्टिक अवस्था में तब तक सुरक्षित रखा जा सकता है जब तक यह वायु के सम्पर्क में नहीं आता। साइलेज बनाने के 60-90 दिन बाद कभी भी इसको खिलाया जा सकता है।

अच्छी गुणवत्ता का साईलेज बनाना

निम्नलिखित नियोगी साईलेज के किण्वन और गुणवत्ता को नियंत्रित करते हैं :-

1. चारे में नमी की मात्रा

साईलेज बनाते समय चारे में शुष्क पदार्थ की मात्रा 30-40 प्रतिशत होनी चाहिए। यदि शुष्क पदार्थ 30 प्रतिशत से कम हैं तो पोषक तत्वों का रिसाव ज्यादा होगा और यदि 40 प्रतिशत से अधिक शुष्क पदार्थ हैं तो साईलेज बनाते समय चारे को वायु रहित करना मुश्किल होगा और इसमें फफूंद उत्पादित होकर इसे खराब कर देते हैं।

2. साईलेज भरने की गति

साइलों में चारे को जितनी अधिक तेजी से भरा जाएगा, साईलेज की गुणवत्ता उतनी ही अच्छी होगी।

3. चारे में उपलब्ध घुलनशील शर्करा

साईलेज की गुणवत्ता चारे में उपलब्ध शर्करा की मात्रा पर निर्भर करती है। अनाज वाली फसलें जैसे जई, मक्का, जौ, ज्वार इत्यादि साईलेज के लिए अधिक उपयोगी हैं। दाल वाली फसलें जैसे लूसर्न, बरसीम, लोबिया, ग्वार से भी कुछ उपचार करने के बाद साईलेज बनाया जा सकता है।

4. भरते समय चारे को दबाना

साइलेज भरते समय चारे को जितना अधिक दबा कर वायु रहित किया जाएगा, साईलेज की गुणवत्ता उतनी ही अच्छी होगी तथा इसके खराब होने का खतरा भी बहुत कम होगा।

5. साइलों को मोहर बन्द (सीलबन्द) करना

साइलों में चारा भरकर इसे मोहरबन्द करना आवश्यक है ताकि बाहर से वायु अन्दर न जा सके और इसकी गुणवत्ता बनी रहे।

6. फसल की भौतिक अवस्था

साइलेज की गुणवत्ता खेत में से चारा काटते समय उसकी भौतिक अवस्था पर काफी निर्भर करती है। चारे वाली फसलें उस समय काटनी चाहिए जब उसमें बालियां निकलनी शुरू हो जाए। लूसर्न को फूल निकलने की आरम्भिक स्थिति में काटना चाहिए, ग्वार और लोबिया को फलियों के भर जाने के तुरन्त बाद काटना चाहिए। जई, मक्का व ज्वार को पकने की प्रारम्भिक या बीच की अवस्था में काट लेना चाहिए। चारे को टोका मशीन से छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लेना चाहिए ताकि गड्ढ़ा भरते समय इसे अच्छी तरह दबाया जा सके।

साईलेज तैयार करने के लिए गड्ढ़ा (साइलो)

गड्ढ़े का चुनाव व आकार पशुओं की संख्या, उनकी दैनिक जरूरत, चारे की उपलब्धता और किसान की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है। साइलेज का गड्ढ़ा जमीन के ऊपर, जमीन के समानान्तर, जमीन के नीचे गहरा गड्ढ़ा या लम्बी खाई के रूप में हो सकता है। पक्के व सिमेंटिड साइलो लागत में मंहगे पर साइलेज के लिए अच्छे होते हैं। पक्के गड्ढ़े में पोषक तत्वों का नुकसान कम होता है। यदि साइलो कच्चा है तो इसकी दिवारों व सुराखों को गारा से अच्छी तरह लेपकर

वायुरोधक बना देना चाहिए। कच्चे गड्ढ़े को नीचे तथा साइडों में प्लास्टिक शीट से ढक देना चाहिए ताकि साइलेज में नमी न पहुंचे। साइलेज की मात्रा लगभग 15 किलोग्राम प्रति घन फुट होती है। क्षमता के अनुसार गड्ढ़े का आकार बनाया जा सकता है।

क्षमता (क्विंटल)	लम्बाई (फुट)	चौड़ाई (फुट)	गहराई (फुट)
22.5	5	5	6
45.0	10	5	6
67.5	15	5	6
90.0	20	5	6
112.5	25	5	6
225.0	25	10	6

साइलो की भराई

यदि गड्ढ़ा कच्चा है तो भरने से पहले उसकी दीवारों व धरातल को पूरी तरह गारे का प्लस्तर कर देना चाहिए। मिट्टी व हरे चारे के सीधे सम्पर्क को रोकने के लिए चारों तरफ व धरातल पर भूसा लगा देना चाहिए। यदि सम्भव हो सके तो गड्ढ़े की दीवारों व धरातल पर प्लास्टिक शीट बिछा देनी चाहिए। हरे चारे को उचित अवस्था में 30-40 प्रतिशत शुष्क पदार्थ तक सुखा लें। चारे को कुटी काटने वाली मशीन में छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लें। चारे को परत दर परत साइलो में भरें व प्रत्येक परत को अच्छी तरह दबाते जाएं। ऊपर के भाग में विशेषकर दीवारों के साथ व कोनों में चारे को अच्छी तरह दबा दें। गड्ढ़े को दो-तीन फुट ऊंचा करें ताकि ऊपर का भाग दबने के बाद भी जमीन से उंचा रहे। साइलो भरने के बाद साइलेज को हवा व पानी से बचाने के लिए ऊपर से प्लास्टिक शीट से ढककर मिट्टी, गोबर, आदि से मोहरबन्दी करें। मुहरबन्दी वाली सामग्री की परत 5-6 इन्च मोटी होनी चाहिए। साइलेज के नीचे बैठने पर साइलेज और मुहरबन्दी के बीच हवा रह सकती है। इसलिए एक सप्ताह तक सतह वाली मुहरबन्दी की सामग्री को कभी कभी दबाते रहें। वर्षा के पानी को रोकने के लिए गड्ढ़े के चारों ओर मिट्टी का बांध बना देना चाहिए।

फसलों का उपचार करके साइलेज बनाना

दाल वाली फसलों में चीनी की कमी परन्तु नमी व प्रोटीन की अधिकता होती है। इसलिए इनका स्वतन्त्र रूप से साइलेज नहीं बनता। इन फसलों का साइलेज बनाने के लिए इन्हें 35-45 प्रतिशत शुष्क पदार्थ तक सुखा लें। इसके लिए इन्हें एक-दो दिन तक खेत से काटने के बाद सुखा लें। इससे पानी की मात्रा कम और चीनी की मात्रा अधिक हो जाती है। दाल वाली फसलों को भूसे के साथ मिलाकर भी साइलेज बनाया जा सकता है। इससे न केवल चारा सुरक्षित रहता है बल्कि गेहूं के भूसे की उपयोगिता भी बढ़ जाती है। दाल वाली फसलों के चारे का साइलेज दूसरे चारे जिसमें घुलनशील चीनी की मात्रा अधिक होती है जैसे मक्का, ज्वार, बाजरा, जई, जौ इत्यादि के साथ मिलाकर बनाया जा सकता है। इस प्रकार का साईलेज प्रोटीन तथा ऊर्जा दोनों से सम्पन्न होता है। दाल वाली फसलों के चारे में एक किलोग्राम शीरा व एक किलो नमक प्रति क्विंटल डालकर इसकी पौष्टिकता बढ़ाई जा सकती है।

साइलेज निकालना

गड्ढ़े से साइलेज को 60-90 दिन के बाद कभी भी जब जरूरत हो निकालकर पशुओं को खिला सकते हैं। खोलने के बाद यह आवश्यक है कि पशुओं की संख्या तथा प्रति पशु साइलेज खिलाने की मात्रा के हिसाब से रोजाना एक परत गड्ढ़े के सामने से एकसार हटाकर खिलानी चाहिए। गड्ढ़ा खोलने के बाद यह आवश्यक है कि एक गड्ढ़े का पूरा साइलेज खिला दें।

तालिका 1. भिन्न-भिन्न किस्म के पशुओं को दी जाने वाली साइलेज का मात्रा

पशु	साइलेज की मात्रा प्रति पशु/किलोग्राम
दूध देने वाली गाय, भैंस	25-30
बैल	20-25
गाभिन पशु	15-20
कट्टे, कटड़ी	10-15

खराब साइलेज नहीं खिलाना चाहिए। जितना जरूरी हो उतना ही साईलेज बाहर निकालना चाहिए। यद्यपि साइलेज तैयार करने में कुछ पौष्टिक तत्वों की क्षति अवश्य होती है फिर भी साइलेज खिलाना सस्ता व लाभदायक रहता है। इससे दाने की भी बचत होती है।

अच्छे साइलेज की पहचान

1. भूरा-पीला रंग।
2. खाने में स्वादिष्ट व अम्लीय।
3. पी.एच. 3.5 से 4.5 तक।
4. अच्छी गन्ध।
5. फफूंद रहित।
6. कुल नत्रजन का 10-15 प्रतिशत अमोनिया नत्रजन।

साइलेज के लाभ

1. चारे की अधिकता के समय फालतू चारे का सुरक्षित भण्डारण।
2. कमी के समय में पशुओं के लिए अच्छा आहार।
3. क्योंकि चारा उचित भौतिक अवस्था में काटा जाता है। इसलिए अधिक से अधिक पोषक तत्व सुरक्षित रहते हैं।
4. पशुओं को कम या अधिक पके चारे खिलाने से होने वाले नुकसान से बचाव।
5. कम जगह में अधिक चारा भण्डारण।
6. खेत एक दम खाली होने पर अगली फसल की समय पर बीजाई सम्भव है।

2. 'हे' बनाना

हरे चारे को पकने से पहले उचित भौतिक अवस्था में काटकर 13 प्रतिशत या कम नमी पर परिरक्षण करना 'हे' कहलाता है। ये भूसे से ज्यादा स्वादिष्ट एवं पौष्टिक होता है क्योंकि इसमें फसलों के सारे पौष्टिक तत्व मौजूद होते हैं। 'हे' दाल वाली चारे की फसलों को उचित समय पर काटकर तथा सुखाकर बनाया जाता है। इसमें सारे पत्ते होते हैं तथा इसका रंग हरा होता है तथा यह फफूंद, मिट्टी तथा खरपतवार रहित होती है। अच्छी गुणवता के 'हे' में उस फसल की गन्ध आती है जिससे इसे बनाया गया है। जब दाल वाली फसलों और घास इत्यादि को मिलाकर 'हे' बनाया जाता है तो इसकी पौष्टिकता और बढ़ जाती है। 'हे' बनाने का मुख्य उद्देश्य है चारे में सुरक्षित ढ़ंग से नमी को कम करना ताकि इसका सुरक्षित भण्डारण किया जा सके।

'हे' बनाने की विधि

चारे की फसल को काटकर दो या तीन दिन के लिए खेत में सुखाया जाता है। उसके बाद लोहे या लकड़ी से बने रेक पर चारे को रखा जाता है ताकि हवा आसानी से गुजर सके और

चारा जल्दी सूख सके। कई बार चारे को छोटे-छोटे बंडल बनाकर भी सुखाया जाता है ताकि पत्तों का नुकसान कम से कम हो और सूखने के बाद छोटे बंडलों का ढेर लगा दिया जाता है। आधुनिक तरीके से 'हे' बनाने के लिए फसल को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लिया जाता है और बिजली द्वारा उत्पन्न गर्म हवा से सुखाया जाता है। बहुत अच्छी किस्म का 'हे' बनाने के लिए चारे को काट कर पतली तह में छांव में सुखाया जाता है। इस तरीके से पोषक तत्व ज्यादा सुरक्षित रहते हैं।

सावधानियां

1. ज्यादा समय तक चारे को धूप में न सुखायें।
2. नमी को 12 प्रतिशत तक रखें।
3. 'हे' को छाया में ढ़ेर लगाकर भण्डारण करें।
4. दाल वाली फसलों के पत्ते तथा नाजुक भाग 2-3 गुणा ज्यादा पौष्टिक होते हैं। इसलिए इसका नुकसान कम से कम होने दें।
5. कृत्रिम रूप से छांव में सुखाई गई 'हे' में विटामिन-ए का नुकसान कम होता है।
6. वर्षा में भीगने पर 'हे' के पौष्टिक तत्वों का काफी नुकसान होता है।

'हे' की गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले कारक

1. फसल काटने का समय

फसल को उस भौतिक अवस्था पर काटना चाहिए जिस समय उसमें अधिकतम पौष्टिक तत्व मौजूद हों।

2. पत्तों का योगदान

क्योंकि पत्तों की पौष्टिकता तनों से तीन गुणा ज्यादा होती है इसलिए 'हे' बनाते समय कम से कम पत्ते गिरने दें।

3. 'हे' का रंग

'हे' का रंग हरा होना चाहिए क्योंकि इसमें कैरोटिन की अधिकता होती है।

4. भूमि की किस्म

जिस भूमि में पोषक तत्वों की कमी होती है, उससे प्राप्त चारे से अच्छी गुणवत्ता की 'हे' नहीं बनाई जा सकती।

5. सुखाने का तरीका

थोड़े समय के लिए धूप में सुखाकर फिर कृत्रिम रूप से छांव में सुखाकर तैयार की गई 'हे' की पौष्टिकता केवल धूप में सुखाकर बनाई गई 'हे' से अच्छी होती है।

6. चारे की फसल

दाल वाली फसलों की 'हे' अनाज वाली फसलों से अधिक गुणवत्ता की होती है।

3. सूखे चारों की पौष्टिकता बढ़ाना

यूरिया उपचारित तूड़े का कूप

भारतवर्ष में तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण पशु आहार में अनाज का अनुपात दिन-प्रतिदिन घटता जा रहा है। हमारे देश में पशुओं की संख्या भी हर वर्ष बढ़ती जा रही है। अनाज वाली मुख्य फसलें जैसे गेहूं, धान, जौ, चना व मक्का आदि से अनाज के साथ-साथ लगभग उसी मात्रा में भूसा, पराली व कडबी भी मिलती है। फसल पकने के बाद ही भूसा, पराली व कड़बी मिल सकती है। अतएव यह स्पष्ट है कि पौधों द्वारा मिट्‌टी व पानी से ग्रहण किये गए सभी पौषक तत्व अनाज के दाने बनने में प्रयोग हो जाते हैं तथा दानों को अलग करने पर जो भूसा व पराली मिलते हैं उसमें पौषक तत्वों की मात्रा नाम मात्र ही रह जाती है।

भूसे में विशेषकर प्रोटीन, वसा, लवण और विटामिनों की कमी होती है। हालांकि भूसे में कार्बोहाइड्रेटस की मात्रा काफी होती है परन्तु जब तक भूसे को उपचारित न किया जाए तब तक पशु को भूसे से पर्याप्त मात्रा में ऊर्जा प्राप्त नहीं हो सकती। इन कारणों को मध्येनजर रखते हुए सम्बन्धित

वैज्ञानिकों ने भूसा, पराली व कडबी की पौष्टिकता व गुणवत्ता को बढ़ाने के भरसक प्रयत्न किये हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है :-

अ) सूखे चारे को पानी में भिगोकर खिलाना

देश के अनेक भागों में गर्मी के मौसम में तापमान अधिक होता है और प्रतिवर्ष बढ़ता ही जा रहा है जिसके कारण दूध उत्पादन कम हो जाता है। इस समय अगर भूसे को पानी से धो लिया जाए या अधिक पानी में भिगो दिया जाए तो उसमें एक तो धूलकण कम हो जाते हैं और दूसरा पशु भीगे हुए भूसे को ज्यादा मात्रा में खाते हैं तथा दूध उत्पादन ठीक रहता है।

ब) सूखे चारे में यूरिया व शीरा मिलाकर खिलाना

भूसे, पराली व कडबी आदि सूखे चारों में प्रोटीन की मात्रा नाममात्र होती है। सूखे चारों में प्रोटीन की मात्रा बढ़ाने के लिए यूरिया तथा कार्बोहाइड्रेट की मात्रा बढ़ाने के लिए शीरा मिलाया जाता है क्योंकि शीरा आसानी से मिल जाता है और इसकी कीमत भी कम होती है। अनाज की अधिक कीमत तथा मनुष्य के आहार में प्रयोग होने के कारण इनको खिलाना मंहगा पड़ता है। विशेषकर बाढ़ग्रस्त व सूखाग्रस्त क्षेत्रों में पशुओं को भूसे में शीरा व यूरिया मिलाकर खिलाना अत्यन्त लाभकारी रहता है। एक क्विंटल भूसे, पराली या कड़बी के लिए पहले एक किलोग्राम यूरिया को 10 से 15 लीटर पानी में घोल लें, उसके बाद 10 किलोग्राम शीरा इस घोल में मिला दें। अगर सर्दियों के दिनों में घोल तैयार करना हो तो शीरे को थोड़ा सा गर्म करके यूरिया व पानी के घोल में अच्छी तरह मिला दें। इसके पश्चात् इस मिश्रण में आधा किलोग्राम खनिज मिश्रण (आई.एस.आई. मार्का) व साधारण नमक भी मिला दें। भूसे या पराली की सानी को बरामदे में पक्के फर्श पर फैला दें तथा

घोल को दोबारा अच्छी तरह हिलाकर पराली या भूसे पर स्प्रे करें तथा उपरलिखित घोल को अच्छी तरह सानी या भूसे में मिला दें। इस प्रकार उपचारित भूसे को ताजा खिलाया जा सकता है। गाय या भैंस के छोटे बच्चों को छोड़कर सभी उम्र के गौ पशु व भैंसों को खिलाया जा सकता है।

1. दुधारू पशु (3 लीटर दूध)	-	इच्छानुसार
2. बैल व सांड	-	इच्छानुसार
3. दूध न देने वाली गाय भैंस	-	इच्छानुसार
4. हीफर (झोटिया)	-	इच्छानुसार

स) भूसे का रासायनिक उपचार करना

वैज्ञानिकों ने सतत् अनुसन्धान करके भूसे को यूरिया से उपचारित करने की विधि का विकास किया है। यह विधि सस्ती तथा आसान है तथा उपचारित भूसे में प्रोटीन की मात्रा 8-9 प्रतिशत तक हो जाती है और भूसे को खलिहानों में ही उपचारित किया जा सकता है। इस विधि द्वारा 4 किलोग्राम यूरिया खाद को पहले 60 लीटर पानी में घोल लेते हैं और फव्वारे में भरकर एक क्विंटल भूसे की तह पर छिड़काव करके अच्छी तरह मिलाया जाता है। इस प्रकार इस दर से भूसे को यूरिया के घोल से छिड़काव करके बड़ा ढेर बना सकते हैं तथा अच्छी तरह दबाकर ऊपर से घास आदि से या पॉलिथीन की सीट से ढककर मिट्टी का लेप करके 'धड़' के आकार में रख दिया जाता है। भण्डारण के समय ढ़ेर में हवा नहीं रहनी चाहिए। इस ढ़ेर को चार सप्ताह बाद खोलना चाहिए। इस समय यूरिया से अमोनिया (अमोनियेशन) बनती है तथा उपचारित भूसे का रंग कत्थई होता है।

सावधानियां

1. यूरिया के घोल को भूसे में अच्छी तरह मिलाना चाहिए।
2. भण्डारण के समय भूसे को अच्छी तरह दबाना चाहिए ताकि अन्दर की हवा बाहर निकल जाए।
3. उपचारित भूसे के ढ़ेर में वर्षा आदि का पानी नहीं घुसना चाहिए।
4. उपचारित भूसे के ढ़ेर को खोलने के तीन घंटे बाद पशुओं को खिलाना चाहिए ताकि फालतू अमोनिया उड़ जाए वरना पशुओं को खाते समय परेशानी हो सकती है।
5. उपचारित भूसे के साथ 50 ग्राम खनिज मिश्रण तथा 20 ग्राम साधारण नमक प्रत्येक पशु को खिलाना चाहिए।
6. इस प्रकार उपचारित भूसा पशुओं के जीवन निर्वाह के लिए काफी होता है तथा दुधारू पशुओं के लिए प्रतिदिन 750 ग्राम से एक किलोग्राम दाने की बचत हो जाती है।

प्रमुख रोग व रोकथाम

जन्म के समय छोटे कटड़े-कटड़ियां आमतौर पर स्वस्थ पैदा होते हैं। असन्तुलित आहार, प्रदूषित हवा, अस्वच्छ पानी, पशुपालक की लापरवाही आदि, पशुओं के लिए अनेक बीमारियों के कारण बन जाते हैं। बीमारी से न केवल पशुओं की शारीरिक वृद्धि रूकती है बल्कि उनकी उत्पादन क्षमता पर भी बुरा असर पड़ता है। बीमारियों से पशुओं को दो तरह की हानियाँ होती हैं। एक तो बीमार व कमजोर पशु वयस्क होने में ज्यादा समय लेता है और कम उत्पादन देता है तथा दूसरा बीमारी से पशुओं की मृत्यु होने पर पशु पालकों को आर्थिक नुकसान होता है। पशु की मृत्यु से होने वाले आर्थिक नुकसान का तो पशुपालक आकलन कर सकते हैं लेकिन बीमार पशु से होने वाली आर्थिक हानि को वे आकलित नहीं कर पाते। इस कारण पशुओं से वांछित लाभ नहीं होता। अगर पशुपालक प्रतिदिन अपने पशुओं को ध्यान से देखें तो सहजता से ही पशुओं में होने वाली बीमारी का पता लगाया जा सकता है। रोगी पशु की कुछ समस्याओं का निदान पशुपालक स्वयं कर सकते हैं तथा ज्यादा विकट समस्या के लिए नजदीकी पशु चिकित्सक की सहायता ली जा सकती है।

रोगी पशु की पहचान

पशुपालकों को पशुओं के रोग जानने के लिए सचेत रहना चाहिए। आमतौर पर रोगी पशु के मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं :-

- रोगी पशु सिर झुका कर समूह से अलग खड़ा रहता है।
- रोगी गाय व भैंस की मुख्य पहचान है कि वह चरना तथा जुगाली करना बन्द कर देती है।
- रोगी पशु के कोख की चमड़ी सख्त हो जाती है जिसका अभिप्राय: पेट में गड़बड़ या बुखार होना है। बालों का खड़ा होना भी बीमारी का चिन्ह है।
- स्वस्थ पशु का थूथन व नाक गीला रहता है। आंखों में चमक स्वस्थ पशु का चिन्ह है। इसके विपरीत डूबी आंखें तथा पशु का एक ही स्थान पर देखना 'मिल्क फीवर' की प्रथम निशानी है।
- पेशाब साफ तथा दुर्गन्ध रहित होना चाहिए। यह खूनी तथा गहरे रंग का नहीं होना चाहिए। स्वस्थ पशु के गोबर की बनावट अर्ध-ठोस होनी चाहिए।
- दूध में कमी तथा उसके रंग, स्वाद व बनावट में परिवर्तन थनैला रोग का सूचक है।
- पशु के सामान्य तापमान में बदलाव, नाड़ी की तेज गति तथा तेज सांस लेना बीमारी के लक्षण हैं।

गाय व भैंसों में पाए जाने वाले मुख्य रोग, उनके लक्षण तथा रोकथाम के उपायों का वर्णन निम्न प्रकार से है :-

खनिज तत्वों की कमी से पशुओं में होने वाली व्याधियां

खनिज तत्वों का पशुओं के शारीरिक विकास, प्रजनन तथा स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए अत्यधिक महत्व है।

तालिका 1. पशुओं में जनन, नाड़ी, श्वास गति एवं तापमान

विवरण	भैंस	गाय
यौवनावस्था	30-40 महीने	30-35 महीने
शारीरिक तापमान	100.3^0 फा.	98.8^0 फा.
नाड़ी की गति प्रति मिनट	52-60	40-45
श्वास गति प्रति मिनट	24-30	16-18
औसत आयु	20 साल	22 साल
गर्भावस्था (दिन)	290	310
गर्मी में रहने की अवधि (घंटे)	16-24	18-24
ऋतु अवधि चक्र (दिन)	18-24	18-24 (औसत 21 दिन)
गर्भाधान का उचित समय	गर्मी में आने के 10-12 घंटे बाद ।	

कैल्शियम, फास्फोरस, सोडियम, पोटाशियम, मैग्नीशियम, सल्फर (गंधक) एवं क्लोरीन वृहत खनिज तत्वों में आते हैं। इन तत्वों की शरीर में ज्यादा जरूरत होती है और पशु आहार में इनकी मात्रा अधिक रखनी पड़ती है। लोहा, आयोडीन, मैंगनीज, तांबा, कोबाल्ट, जस्ता, सैलीनियम, मोलिब्डेनम तथा क्रोमियम आदि विरल खनिज तत्वों में आते हैं। विरल तत्वों की जरूरत शरीर को विभिन्न क्रियाओं में कम मात्रा में होती है। खनिज तत्वों की आवश्यकता पशु के दुग्ध उत्पादन की मात्रा पर काफी निर्भर करती है। पशु आहार में खनिज तत्वों की प्राप्ति प्रायः हरे चारे एवं दाने से हो जाती है। यदि पशुओं को एक तरह का चारा व दाना दिया जाए तो उससे सारे खनिज तत्व तो शायद मिल जाएंगे परन्तु उनकी मात्रा पशु के शरीर की आवश्यकता के अनुसार नही मिल सकती। अधिक फसलें तथा अधिक उपज वाली फसलों की किस्में उगाने से मिट्टी में खनिज तत्वों की कमी दिन-प्रतिदिन लगातार बढ़ती जा रही है। मिट्टी में खनिज तत्वों की कमी के कारण हरे चारे व सूखे चारों में इन तत्वों की कमी हो जाती है। परिणामस्वरूप इन तत्वों की कमी पशुओं के शरीर में हो जाती है जिससे अन्य तत्वों का संतुलन भी बिगड़ जाता है। लवणों की कमी के कारण पशु कागज, मिट्टी, बोरी, कपड़ा आदि खाने तथा पेशाब चाटने लग जाते हैं। फास्फोरस की कमी के कारण पशुओं में लाल पेशाब (लहूमूतन बीमारी) तथा जोड़ों में सूजन आदि की समस्या हो जाती है। दुधारू पशुओं के ब्याने के तुरन्त बाद 'दूध ज्वर' नामक बीमारी हो जाती है जिसके कारण गाय या भैंस बैठ जाती हैं और बिना इलाज किये मर जाती हैं। इसका मुख्य कारण कैल्शियम की कमी होती है। इस बीमारी के इलाज के लिए तुरन्त पशु चिकित्सक से कैल्शियम युक्त औषधि या टीके लगवाने से पशु ठीक हो जाता है। इस बीमारी से बचाव के लिए पशुपालकों को पशु ब्याने के बाद पूरा खीस नहीं निकालना चाहिए तथा पशु को ब्याने से दो महीने पहले खनिज मिश्रण (30-50 ग्राम प्रति पशु प्रति दिन) देना शुरू कर देना चाहिए। कैल्शियम और फास्फोरस की कमी के कारण गाय व भैंस पीछा (फूल) दिखाना शुरू कर देती है। पशु के शरीर में कैल्शियम व फास्फोरस का अनुपात (2:1) सही रहना अति आवश्यक है अन्यथा छोटे पशुओं में 'सूखा रोग' (रिकैट) तथा बड़े पशुओं में 'औस्टियो मलेशिया' नामक रोग हो जाते हैं जिससे हड्डियां कमजोर होकर मुड़ जाती हैं। दुधारू पशुओं में इन तत्वों की कमी के कारण प्रजनन शक्ति क्षीण हो जाती है और दूध उत्पादन भी घट जाता है। आयोडीन की कमी के कारण गले में घैंघा (गोला) हो जाता है। मैग्नीशियम की कमी से बच्चों में 'टिटेनी' नामक रोग हो जाता है। इसी तरह आहार में लोहा, ताम्बा और कोबाल्ट की कमी से पशु के शरीर में खून की कमी हो जाती है। जिंक और कोबाल्ट की कमी के कारण भूख कम लगती है तथा पशु चारा खाना कम कर देता है। पशु आहार में जब यूरिया का प्रयोग किया जाता है तो प्रोटीन की उपयोगिता बढ़ाने के लिए गन्धक (सल्फर) का सही अनुपात में होना अति आवश्यक है जिसके लिए हम आहार में शीरा मिलाकर इसकी कमी को पूरा कर सकते हैं। सोडियम व क्लोराइड की कमी को हम 20-25 ग्राम सादा नमक प्रति दिन प्रति पशु देकर पूरा कर सकते हैं। सोडियम की कमी के कारण पशु की पाचन क्रिया पर कुप्रभाव पड़ता है। सोडियम व क्लोराइड रूमन की पी.एच. को सामान्य बनाए रखने के लिए जरूरी है जिससे पाचन शक्ति ठीक रहती है तथा भूख बढ़ती है। कभी-कभी इन खनिज तत्वों की अधिकता के कारण भी पशु कई बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। क्षारीय (चरचरी) भूमि में उगाये गये चारे में सैलेनियम की मात्रा ज्यादा हो जाती है, जिसके कारण पशुओं में 'डेंगनाला' (पूंछ किरना) नामक बीमारी हो जाती है। कई इलाकों में पानी में फ्लोरीन की अधिकता के कारण पशुओं में इसका जहरीलापन पाया जाता है और दांतों की खराबी व लंगड़ापन आदि व्याधियां बढ़ जाती है। कल-कारखानों वाले इलाकों में कारखानों के धूएं से फ्लोरीन, सीसा और कैडमियम आदि खनिज लवण चारे में आकर मिल जाते हैं जिसके कारण पशुओं में इन लवणों की अधिकता बढ़ जाती है। खनिज लवणों की कमी से पशुओं में प्रजनन समस्याएं भी बढ़ जाती हैं।

खनिज तत्वों की कमी को पूरा करने के लिए पशुओं को संतुलित आहार देना चाहिए। संतुलित आहार से पशुओं को उनकी जरूरत के अनुसार सभी पोषक तत्व सही मात्रा में मिल जाते हैं तथा उपर्युक्त खनिज तत्वों की कमी से होने वाली व्याधियां/बीमारियों से पशुधन को बचाया जा सकता है। पशुपालकों को अपने पशुओं को सारा साल अच्छी गुणवत्ता का हरा चारा उपलब्ध करवाना चाहिए। इसके लिए दो कतारों में अफलीदार चारे जैसे मक्का (अफ्रीकन टाल किस्म) या

एस.एस.जी.-59-3 ज्वार (3-4 कटिंग देती है) की फसल के बीच में एक कतार फलीदार चारे की जैसे लोबिया-1 या 2 किस्म की बिजाई मार्च के महीने में कर देनी चाहिए। फलीदार चारे में लोबिया, ग्वार, बरसीम, रिजका आदि फसलें आती हैं जिनमें प्रोटीन, कैल्शियम तथा फास्फोरस आदि अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। सन्तुलित दाने में 16 प्रतिशत पाच्य क्रुड़-प्रोटीन तथा 72 प्रतिशत कुल पाच्य पदार्थ होते हैं। चौकर में फास्फोरस की मात्रा अधिक होती है। हड्डी के चूरे, मछली के चूरे आदि में कैल्शियम तथा फास्फोरस अधिक मात्रा में पाया जाता है। इसलिए पशुपालकों को अपने पशुओं के लिए हरे चारे का प्रबन्ध वर्ष भर करना चाहिए क्योंकि हरे चारे में सभी पोषक तत्व मौजूद होते हैं। पशुओं को खनिज तत्वों की कमी से बचाने के लिए प्रतिदिन 30-50 ग्राम उच्च गुणवत्ता का आई. एस.आई. मार्क खनिज मिश्रण खिलाना चाहिए। निम्न तालिका की सहायता से पशुपालक स्वयं भी पशुओं के लिए उच्च गुणवत्ता का खनिज मिश्रण तैयार कर सकते हैं।

तालिका 2 लिखित खनिज लवणों को दी गई मात्रा के अनुसार तोले। सभी पदार्थ सूखे होने चाहिए। विरल खनिज लवणो को छोटे तराजु से तोलें तथा सभी को अलग-अलग बारीक पाऊडर के रूप में पिसाई करें। विरल लवणो को छोटे बर्तन में अच्छी तरह मिलाकर बाद में इन्हें बाकी खनिज लवणो के साथ भली-भांति मिलाए। मिश्रण को प्लास्टिक की थैलियो में अच्छी तरह सील करके रखें।

नवजात बछड़ों के रोग व रोकथाम

नवजात बछड़ों का वैज्ञानिक ढ़ंग से पालन-पोषण एवं रोग से बचाव ही पशुपालकों को अधिक लाभ कमाने का जरिया हो सकता है। कमजोर एवं बीमार बच्चे बड़े होकर कमजोर एवं कम-उत्पादन वाले पशु बन जाते हैं, तथा उनकी प्रथम ब्यांत की उम्र भी बढ़ जाती है जिससे पशुपालकों को हानि उठानी पड़ती है। नवजात बछड़े-बछड़ियों में मृत्यु दर कभी-कभी 50 प्रतिशत तक हो जाती है। नवजात बच्चों में अधिकतर रोग सही रख-रखाव के अभाव में होते हैं। बच्चों में मुख्य रूप से होने वाले रोग न्यूमोनिया, पेचिश, नाभिरोग, कानों में पीप पड़ना, पेट में गैस भरना, जोड़ों की सूजन, दाद-खुजली, आँतों के कृमि व चीचड़ आदि हैं। इनमें से मुख्य रोग एवं उनकी रोकथाम के विषय में विवरण नीचे दिया गया है जो पशुपालकों के लिए लाभदायक है।

तालिका 2. 100 किलोग्राम खनिज मिश्रण बनान हेतु सामग्री

क्र. संख्या	खनिज लवण	कि.ग्रा.
1.	डाई कैल्शियम फास्फेट	55
2.	सोडियम क्लोराइड (नमक)	30
3.	मैग्नीशियम कार्बोनेट	3
4.	फेरस सल्फेट	0.50
5.	मैग्नीज डाई आक्साइड	0.01
6.	कोबाल्ट क्लोराइड	0.05
7.	सोडियम फलोराइड	0.01
8.	जिंक सल्फेट	0.25
9.	पोटाशियम आयोडाईड	0.01
10.	चाक पाउडर	11.04

1. न्यूमोनिया

यह रोग कई कारणों से उत्पन्न होता है। कई प्रकार के सूक्ष्म-परजीवी, तरल-दवा पिलाते समय श्वास नली में दवा

तालिका 3. पशु आहार में खनिज स्रोत

खनिज	स्रोत
फास्फोरस	खल, चौकर, चावल की पॉलिश
कैल्शियम	लुसर्न, बरसीम, लोबिया व अन्य हरे चारे, बिनौले की खल
जिंक (जस्ता)	बरसीम, लुसर्न, लोबिया व अन्य हरे चारे, चौकर, खल, दालें, ग्वार की चूरी
तांबा	चौकर, खल, बरसीम, लुसर्न, लोबिया व अन्य हरे चारे
लोहा	लोबिया, बरसीम, लुसर्न व अन्य हरे चारे, पेड़ों के पत्ते आदि
मैंगनीज	चावल की पॉलिश, चौकर, गेहूं, जौ, जई व मक्का आदि के दाने, लोबिया, बरसीम व लुसर्न, हरे चारे।

का प्रवेश कर जाने के कारण, बच्चों का ठंड व नम स्थानों पर रहना आदि परिस्थितियां इस रोग के लिए सहायक हैं।

तेज सांस लेना, नाक से पानी या गाढ़ा चिपचिपा पदार्थ निकलना, ठंड लगना, तेज बुखार आदि इस रोग के मुख्य लक्षण हैं। इस रोग के उपचार के लिए बच्चों को उबलते हुए पानी में विक्स या तारपीन का तेल डालकर भांप देनी चाहिए। छाती पर तारपीन के तेल की मालिश करके गर्म कपड़े में लपेटना चाहिए तथा चिकित्सीय सहायता लेनी चाहिए।

इस रोग की रोकथाम व बचाव के लिए बच्चों को अचानक मौसम परिवर्तन से बचाना चाहिए। पशुओं को स्वच्छ एवं ताजा पानी पिलाना चाहिए। बच्चों के रहने के स्थान स्वच्छ, हवादार एवं रोशनी-युक्त होने चाहिए तथा उनका बिछावन पूरी तरह सूखा होना चाहिए।

2. सफेद दस्त/पेचिश

दस्त/पेचिश का रोग प्राय: 2 से 5 दिन की उम्र के बच्चों में अधिक होता है। यह रोग कई प्रकार के जीवाणुओं से उत्पन्न होता है, जिनमें इसचिरेशिया कोलाई मुख्य है। मां के गर्भकाल में पोषक-तत्वों की कमी का होना, बच्चों को गंदा पानी या दूध पिलाना, खीस को आवश्यकता से कम या अधिक मात्रा में पिलाना आदि इस रोग के मुख्य कारण हैं।

तेज बुखार, पिचकारी के समान छूटने वाला पतला, बदबूदार तथा झागदार दस्त होना, बच्चों की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाना तथा कमजोर होकर बच्चों का मर जाना, इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। अधिक दस्त होने पर सल्फागोनीडीन की पांच ग्राम की आधी गोली दी जा सकती है। बच्चों को गुनगुने पानी में नमक व चीनी का घोलकर बार-बार पिलाना चाहिए।

रोग से बचाव के लिए नवजात बच्चों को स्वच्छ पानी व दूध पीने के लिए देना चाहिए। पशु बाड़े को जीवाणु रहित बनाना चाहिए तथा सन्तुलित मात्रा में ही बच्चों को दूध पिलाना चाहिए। बिछावन सूखा होना चाहिए तथा बीमार बच्चों को अलग रखना चाहिए।

3. नाभि-रोग

नवजात बच्चों में नाभि काटने के उपरान्त यह समस्या आमतौर पर पाई जाती है। नवजात पशुओं में नाभि पर सूजन होना, मवाद भरना, बुखार, सुस्ती, भूख कम लगना, दर्द आदि प्रमुख लक्षण हैं। कई बार यह रोग जोड़, आंख, कान, पेट, पूंछ, दिमाग आदि तक फैल जाता है। इससे बचाव के लिए जन्म के समय बच्चों की नाल को सफाई से काटकर एन्टीसेप्टिक दवाई लगा देनी चाहिए तथा नाल को खिंचाव से बचाना चाहिए। उपचार के लिए नाभि में छेद करके मवाद बाहर निकाल देना चाहिए। घाव पर मक्खी न बैठने दें। पशुघर को साफ रखें तथा नर्म व सूखे बिछावन का प्रयोग करें।

जीवाणुओं से होने वाले रोग

1. ब्रूसेलोसिस

इस रोग से ग्रसित पशु में गर्भपात 6-8 महीने के गर्भकाल में होता है। यह रोग दूषित चारे या पानी से, जेर गिरने पर रोगी पशु के गर्भस्त्राव से तथा रोगग्रसित नर पशु के वीर्य से मादा पशु में तथा मादा पशु से नर पशु में फैलता है। अत: गर्भाधान से पहले नर व मादा की जांच आवश्यक है। यह रोग जीवाणुओं द्वारा पशु से मनुष्य में फैलता है। इस रोग में पशु को लम्बे समय तक बुखार, कमजोरी, कंपकंपाना तथा गर्भपात के बाद जेर अटक जाती है। गर्भपात में एकाएक वृद्धि होने पर पशुओं के रक्त व दूध के नमूनों की प्रयोगशाला में जांच करवायें। इस रोग से ग्रसित पशुओं को अन्य स्वस्थ पशुओं से अलग कर दें तथा पूर्ण सावधानी बरतें। इस बीमारी से ग्रसित माताओं को तथा उनसे पैदा हुई सभी मादाओं को 4-8 महीने की उम्र में कोटन स्ट्रेन-19 का 5 मि.ली. टीका चमड़ी के नीचे लगवाना चाहिए। नर पशुओं में यह रोग लगने पर उनको निकाल देना चाहिए।

2. एन्थ्रेक्स/जहरी बुखार

यह रोग बीमार पशु के खून, नाक, मुंह आदि से निकले जीवाणु द्वारा पानी व चारा दूषित होने से तथा शरीर के जख्म द्वारा अन्य स्वस्थ पशुओं में फैलता है। यह जीवाणु मनुष्य को भी रोगग्रस्त बनाता है। तेज बुखार एवं अचानक मौत इस रोग के मुख्य लक्षण हैं। मरने के बाद पशु के नाक, मुंह, कान व मलद्वार से काला व न जमने वाला खून निकलता है। यह खून भी इस रोग को तेजी से फैलाता है। अत: इस बीमारी से मृत पशु को या तो गहरे गड्ढे में दबाकर ऊपर चूना डाल दें या शव को तुरन्त जला दें। मरने वाली जगह पर भी चूना आदि डाल दें। इस रोग से बचाव के लिए प्रति वर्ष एक बार

टीकाकरण करवायें लेकिन इस टीके की सिफारिश तब की जाती है जब उस स्थान पर रोग होने की सूचना हो।

3. थनैला

यह रोग दुधारू पशुओं का एक संक्रामक रोग है। इस रोग के कारण दूध उत्पादन में कमी, रोगग्रस्त पशु के दूध की गुणवत्ता खराब होना, एक अथवा अधिक थनों के बेकार हो जाने से पशु का बाजार मूल्य कम होना तथा रोगी पशु को निकालकर उसकी जगह दूसरा पशु लाना आदि कारणों से पशुपालक को काफी नुकसान होता है। थनैला रोग में बहुत से विषैले जीवाणु, विषाणु, फफूंद, माइकोप्लाज्मा तथा रिकैटशिया आदि सम्बद्ध रहते हैं, अतः यह एक पेचीदा रोग है। यह रोग संक्रमण से एक पशु से दूसरे पशु में फैलता है। इस रोग के अन्य कारणों में अयन व थन में चोट लगना, पशुशाला में गन्दगी, दूध निकालने वाले का गन्दा होना, थन या अयन पर बच्चे के दांतों के घाव, पूरा दूध न निकालना, गलत विधि से दूध निकालना आदि शामिल हैं।

थनों या अयन में सूजन आना तथा शरीर का तापमान बढ़ना, थन व लेवटी सख्त, गर्म तथा पीड़ायुक्त होते हैं। बीमारी से ग्रस्त थन से पानी जैसा, मटमैला, खून मिला हुआ या फटा हुआ दूध प्राप्त होता है। कुछ समय बाद थनों में मवाद आने लगती है। दूध की मात्रा कम हो जाती है। दूध के साथ फटे दूध के छिछड़े तथा थक्के आने लगते हैं। बाद में थनों में गांठे हो जाती हैं। अयन सख्त हो जाता है तथा थन में से दूध आना बन्द हो जाता है।

थनों व अयन की सफाई

बचाव व उपचार

इस रोग से पशुपालकों को काफी आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। अतः पशुशाला को साफ रखें। पशुशाला का फर्श अगर पक्का है तो उसे प्रतिदिन पानी व फिनायल आदि से धोयें। साफ बर्तन में, साफ स्थान पर, साफ थनों से एवं साफ व्यक्ति द्वारा ही दूध निकाला जाए। पूर्ण हस्त विधि से दूध निकाले ताकि पशु को तकलीफ न हो। दूध जल्दी-जल्दी एवं पूरा निकालें। दूध निकालने के उपरान्त थनों को लाल दवाई के पानी से धो दें तथा दूध निकालने के बाद बच्चा न चुंघायें। दूध निकालने के आधा घंटे तक 'टीट कैनाल' खुली रहती है। अतः जहां तक सम्भव हो सके दूध निकालने के आध-पौना घंटा तक पशु को बैठने न दें। ऐसा करने के लिए पशु को दूध निकालने के बाद चारा इत्यादि डालें। अधिक दूध देने वाले पशुओं का दूध दिन में तीन बार निकालें। पशुशाला के फर्श में गड्ढ़े नहीं होने चाहिएं। थनों या अयन में सूजन, दूध में किसी भी प्रकार का फर्क दिखाई देने पर पशु चिकित्सक की सलाह लें। प्रभावित थन के दूध की प्रयोगशाला में जांच करवाकर ही इलाज करवायें। इस बीमारी में थोड़ी सी भी लापरवाही काफी आर्थिक नुकसान कर सकती है।

4. गलघोटू (एच. एस.)

यह गाय व भैंसों में होने वाली मुख्य छूत की बीमारी है। इस बीमारी में पशु के शरीर का तापमान 104 से 107^{0} फारनाहीट तक हो जाता है। पशु के गर्दन में सूजन आती है। पशु को श्वास लेने में कठिनाई होती है। पशु के मुंह से आवाज आना तथा लार टपकना आदि। इस बीमारी के होने पर पशु अचानक मरने शुरू हो जाते हैं। यह बीमारी आमतौर पर उन

पशुओं में आती है जिनमें गलघोटू से बचाव का टीका न लगा हो। इसके बचाव के लिए अपने पशु को पशु चिकित्सक से मानसून से पहले यानि जून के महीने में हर साल गलघोटू का टीका लगवाना न भूलें।

5. जहरबाद या लंगड़ीरोग

इस रोग के जीवाणु चारे या पानी द्वारा पशु के शरीर में जाते हैं। जीवाणु मांसपेशियों में पहुंचकर जहर पैदा करते हैं जिससे मांसपेशियां सूखकर नष्ट होना शुरू हो जाती हैं। पशु 48 घण्टे के अन्दर मर जाता है। पैरों की ऊपरी मांसपेशियों में सूजन आना, पशु को बैठकर उठने में कठिनाई महसूस होना, टांगों को छूने पर पशु को दर्द होना, पशु के शरीर पर हाथ फेरने पर चिट-चिट का आवाज आना आदि इस रोग के मुख्य लक्षण हैं। पशु का शारीरिक तापमान 106^{0} फारनाहीट तक नाड़ी की गति 100 से 150 प्रति मिनट तक हो जाती है। इसलिए 6 मास से 2 वर्ष तक की उम्र वाले पशुओं को मई-जून में पशु चिकित्सक से टीका लगवायें।

6. क्षय रोग/तपेदिक

टी.बी. या टयूबरकुलोसिस एक दीर्घकालीन एवं जानलेवा संक्रामक रोग है। इस रोग में पशु खाता तो है लेकिन कमजोर होता रहता है। जीवाणुओं का शरीर में प्रवेश सांस व मुंह से होता है जो फेफड़े एवं लिम्फ ग्रंन्थियों को प्रभावित करते हैं। यह रोग भी पशुओं से मनुष्यों में फैलता है। इस रोग में पशु के जोड़ों में सूजन, चिरकालीन खांसी, सांस लेने में कठिनाई होती है, पशु कमजोर हो जाता है व खाना-पीना छोड़ देता है। पशु को बार-बार बुखार होता है, मुंह व नाक से गाढ़ा तरल पदार्थ गिरता है। ऐसे पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग कर दें तथा उनका व अन्य पशुओं का टी.बी. टेस्ट करवायें।

विषाणुओं द्वारा जनित रोग

1. पोक्स या चेचक

पशु के थनों, अयन, जांघों के अन्दर वाली सतह तथा नर के अण्डकोषों पर गोल, उभरे हुए लाल रंग के कठोर चकते बनते हैं। बाद में घाव सूखकर पपड़ी बन जाती है। इस रोग में पशु को एण्टीबायोटिक इन्जैक्शन व फफोलों पर एण्टीसेप्टिक मलहम लगायें। रोगग्रस्त पशु को अन्य पशुओं से अलग कर दें।

2. मुंह व खुर रोग

यह रोग गाय, भैंस, भेड़ बकरी व सुअर का संक्रामक रोग है। यह रोग रोगी पशु के सम्पर्क में आने से फैलता है। रोगी पशु के मुंह से चपचप आवाज आना तथा लार टपकना, जीभ व मसूढ़ों पर पानी भरे हुए छाले बनना, खुरों के बीच में फफोले, लंगड़ाना तथा खुर उतर जाना आदि इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। इस रोग के उपचार के लिए पशु के मुंह में छालों को लाल दवाई (1 ग्राम 3 लीटर) पानी के घोल से धोना चाहिए। खुरों के फफोले पर फिनाईल (40 मि.ली. 1 लीटर) पानी में डालना चाहिए। रोग से बचाव के लिए बछड़ों में पहला टीका 6 सप्ताह की उम्र पर तथा उसके बाद 6 महीने के अन्तराल पर लगवाना चाहिए। बड़े पशुओं को साल में दो बार टीकाकरण करवाना आवश्यक है।

परजीवियों से फैलने वाले रोग

1. थाइलेरिओसिस

यह चीचड़ों द्वारा फैलने वाला रोग है तथा संकर नस्ल व विदेशी नस्ल के बच्चों व प्रोढ़ों में फैलता है। तेज बुखार ($105-108^{0}$ फा.), कम भूख, आंखों में पानी आना व आंखें सूजना, गर्दन व पैरों के जोड़ की लिम्फ ग्रंथियां सूजना, दिल की धड़कन तेज होना, चमड़ी पर गांठ बनना, कम दूध उत्पादन, रक्तहीनता आदि इस रोग के लक्षण हैं। अगर पशु का तुरन्त इलाज न करायें तो पशु मर सकता है।

2. बैबेसियोसिस

इस रोग में पशु के पेशाब का रंग कॉफी के रंग जैसा हो जाता है। खून की कमी होने के कारण पशु सुस्त हो जाता है। रक्त कोशिकाएं टूटने की वजह से रक्त की कमी तथा आंखें पीली हो जाती हैं।

अन्त: परजीवियों से फैलने वाले रोग

1. खूनी दस्त

यह छोटे बच्चों में 6 माह से कम उम्र में लगता है। जो आइमेरिया नामक परजीवी से होता है। कांक्सीडिया पशु की आंत में रहता है। गोबर पतला, बदबूदार व खूनयुक्त होता है। पशु गोबर करने के लिए जोर लगाता है तथा कमजोर हो जाता है। ये रोग गन्दगी में ज्यादा फैलता है। रोग के लक्षण दिखाई देने पर चिकित्सक की सहायता लें।

2. बोटल जा (पानी उतरना/ओल उतरना)

यह बीमारी जिगर के कीड़ों (लीवर फ्लूक), गोल कृमि आदि से होती है तथा उन स्थानों पर जहां पानी खड़ा रहता है, में ज्यादा आती है। पशु में दस्त लगना, निचले जबड़े के नीचे पानी भरना, कमजोरी, भूख कम लगना तथा आंखों में पीलापन इस रोग के लक्षण हैं। ऐसी दशा में पशु चिकित्सक की सहायता लें।

अन्य रोग :-

1. दूध ज्वर या दूध का बुखार

यह रोग सामान्यत: अधिक दूध देने वाले पशुओं में होता है। इस रोग का प्रभाव पशु के ब्याने के कुछ समय बाद होता है। कैल्शियम दूध का एक महत्वपूर्ण अवयव है जिसकी कमी के कारण ही पशु में यह रोग होता है। गाभिन पशुओं के शरीर से काफी मात्रा में कैल्शियम का प्रयोग भ्रूण की हड्डियों के निर्माण में प्रयोग होता है तथा ब्याने के बाद पशु को पर्याप्त मात्रा में कैल्शियम नहीं मिलने पर उनके शरीर में कैल्शियम की कमी से यह रोग हो जाता है। इस रोग से प्रभावित पशु में पहले उत्तेजना व शरीर में कम्पन के साथ-साथ मांसपेशियों में खिंचाव होता है, आंखें धंस जाती हैं तथा पशु बैठ जाता है या लेट जाता है। शरीर का तापमान सामान्य से कम हो जाता है। बैठने पर अपना सिर पेट पर टिका लेता है। कुछ समय बाद पशु सुस्त होकर बेहोश हो जाता है और उपचार न मिलने पर पशु की मौत हो जाती है।

यह संक्रामक रोग नहीं है। इससे बचने के लिए गाभिन पशु को कैल्शियम की उचित मात्रा दें। इसके लिए गर्भावस्था के अन्तिम दो महीनों से पशु को लगातार 30-50 ग्राम खनिज मिश्रण खिलायें तथा ब्याने के बाद भी इसे लगातार खिलायें। ब्याने के बाद 3-4 दिनों तक पूरा खीस न निकाले वरन् थोड़ा सा दूध थनों में छोड़ दें। इस रोग में पशु को तुरन्त चिकित्सीय सहायता प्रदान करें तथा रोगी पशु को तुरन्त ही रक्त-वाहिनी के द्वारा कैल्शियम दें। दवा देते ही रोगी पशु उठकर खड़ा हो जाता है तथा उसके बाद खनिज मिश्रण लगातार देते रहें ताकि पशु को यह रोग दोबारा न हो।

2. पूंछगलन या डेगनाला रोग

इस रोग की सबसे पहले वर्ष 1939 में एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक शरलव ने पाकिस्तान के डेगनाला नामक स्थान पर पाये जाने की पुष्टि की थी। वहां यह रोग काफी वर्ष पहले से हो रहा था। डेगनाला एक बड़े नाले का नाम है जो पाकिस्तान में प्राकृतिक रूप से बहता है। इस नाले के दोनों किनारों पर बसे गांवों में चारे के रूप में धान के पुआल का प्रयोग अधिक मात्रा में होता था तथा सर्दी के मौसम में इस रोग का अत्यधिक प्रकोप होता है।

पशु के पैरों में सूजन होने के कारण पशु लंगड़ाकर चलता है, पूंछ एवं खुर सूखने लगते हैं और 20-25 दिन बाद गलकर या कट कर गिर जाते हैं। जीभ पर जख्म होने के कारण पशु खाना कम कर देता है। दोनों कानों का अगला भाग सूखकर पीछे की ओर मुड़ जाता है। नाक में भी सड़न या गलन होने लगती है। थन व ल्योटी में सूजन या घाव होने से दूध कम हो जाता है। रोग के आखिर में पशु की मृत्यु हो जाती है। कुछ स्थानों पर लंगड़ेपन की बजाय यह रोग पूंछ से ही शुरू होता है। पूंछ गलकर या सूखकर गिरने लगती है तथा पशु को बुखार व दस्त भी हो जाते हैं। यह रोग धान की पुआल में सेलेनियम के जहरीले प्रभाव के साथ-साथ पुआल में लगी 'फ्यूजेरियम' नामक फफूंद के कारण होता है।

पशुओं को धान की पुआल न खिलायें। अगर धान की पुआल को खिलाना है तो सूखी व साफ पुआल को काटकर गेहूं के भूसे में मिलाकर खिलायें। साथ में हरा चारा पर्याप्त मात्रा में दें। रोग के शुरूआती लक्षण दिखते ही पुआल खिलाना बन्द कर दें। पशु को प्रतिदिन 30-50 ग्राम खनिज मिश्रण

खिलायें। पशु को साफ-सुथरी जगह पर बांधें। पशु को खनिज मिश्रण खिलायें तथा पुआल न दें। जख्म वाली जगहों पर मरहम लगायें तथा जख्मों की सफाई रखें। पशु चिकित्सक की सलाह लें।

3. अफारा

यह रोग पशुओं में दूषित खाना खाने से, साबुत अनाज, बगैर कटी हुई बरसीम, लुसर्न व जई से अथवा फफूंद लगे चारे के खाने से होता है। इसके अलावा पशु के खाने में एकाएक बदलाव भी इस रोग का कारण हो सकता है। इस रोग में पशु के पेट में गैस भर जाती हैं जिसका पता पशु की बांई कोख के अधिक फूलने से लगता है। पशु की बाई कोख को थपथपाने पर आवाज पैदा होती है। पशु खाना-पीना छोड़ देता है, मलमूत्र नहीं त्यागता तथा मुंह को खोलकर सांस लेता है और बेचैन हो जाता है।

पशु को स्वच्छ चारा व पानी पिलाएं। अफारा होने पर पशु को खड़ा रखें तथा इसको घुमाएं। पशु के मुंह को खोलकर उसमें लकड़ी का छोटा टुकड़ा इस प्रकार लगा दें ताकि पशु का मुंह खुला रहे। पशु के पेट को या बाई कोख को बार-बार दबायें ताकि गैस निकल जाए। पशु को 200-250 मिलीलीटर अरण्डी का तेल पिलायें। अगर अफारा कम न हो तो पशु चिकित्सक की सलाह लें।

4. खुजली

खुजली पशुओं से मनुष्यों में फैलने वाला मुख्य रोग है जोकि 'माइट' नामक परजीवी से होती है। 'माइट' की कई प्रजातियां जैसे सारकोप्टिक मेन्ज, सोरोप्टिक, डैमोडैक्टिक, कोरियोप्टिक एवं ऑटोडैक्टिक मेन्ज आदि इस रोग के कारण हैं। केवल सारकोप्टिक स्कैबियाई परजीवी द्वारा उत्पन्न खुजली ही पशुओं से मनुष्यों में फैलती है। ये परजीवी पशु के शरीर पर त्वचा के उस भाग को प्रभावित करते हैं जहां बाल कम होते हैं या नहीं होते जैसे सिर, गर्दन, चेहरा, कान, अयन, अण्डकोष आदि। प्रभावित त्वचा पर पहले लाल रंग के चकते होते हैं तथा बाद में खाल मोटी हो जाती है तथा जगह-जगह गांठें बन जाती हैं। प्रभावित स्थान को पशु खुजली होने पर दीवार या पेड़ आदि की कठोर सतह पर रगड़ता है जिससे घाव बन जाते हैं। सिर को जगह-जगह मारता है जिससे कई बार सींग टूट जाता है। प्रभावित त्वचा से बाल उड़ जाते हैं।

पशुशाला को साफ रखें तथा प्रतिदिन फर्श को धोयें। प्रभावित पशु या व्यक्ति के सम्पर्क में न आएं। पशुओं को हर रोज नहलायें तथा शरीर पर मैल जमा न होने दें। पशुओं की नियमित जांच कराते रहें। रोग का पता लगते ही पशुओं पर परजीवीनाशक दवाओं के घोल का छिड़काव करें। परजीवीनाशक दवाओं के घोल का छिड़काव पशुओं के बांधने के स्थान पर भी करें ताकि जमीन व दीवारों पर मौजूद परजीवी नष्ट हो जाएं तथा अन्य पशुओं को संक्रमित न करें। पशु चिकित्सक से परामर्श करके ही दवाई का प्रयोग करना चाहिए।

5. पशुओं में फूल दिखने की बीमारी

आरम्भ में जब पशु पेशाब करता है या बैठता है तो बच्चेदानी का कुछ भाग बाहर आने लगता है। जब बच्चेदानी पर रेत, मिट्टी या गन्दगी लग जाती है तो पशु को संक्रमण हो जाता है और पशु बार-बार जोर लगाता है। यह बीमारी पशु को ब्याने से पहले या ब्याने के बाद हो सकती है। इसके मुख्य कारण पशु में कैल्शियम की कमी, पशु में हारमोनों का असंतुलन, जेर पूरी तरह न निकलना, योनि में कीटाणुओं का होना आदि हैं। गाभिन पशु को 30-40 ग्राम खनिज मिश्रण प्रतिदिन दें। पशु के बांधने के स्थान पर गन्दगी न होने दें। ब्याते समय गन्दे हाथ पशु की योनि को न लगायें। पशुओं को सन्तुलित राशन के साथ-साथ सारा वर्ष हरा चारा अवश्य दें। पशु को एक स्थान पर बंधा न रखें तथा हल्की कसरत भी करवायें। पशु के बैठने वाले स्थानों को खुरली की तरफ थोड़ा ढलवां रखें।

6. पशु में जेर का समय पर न गिरना

पशु ब्याने के 10-12 घण्टे बाद भी यदि जेर न निकले तो चिन्ता का कारण बन जाता है। यदि 36 घण्टे से अधिक समय हो जाए तो जेर 6-10 दिन में टुकड़ों में ही निकलती है। इसके मुख्य कारण पशु के शरीर में कैल्शियम की कमी, निर्धारित समय से पहले पशु का ब्याना, बच्चादानी में कीटाणुओं का होना तथा बच्चे का शरीर भारी होना आदि हैं। जेर न गिरने से पशु की बच्चादानी में सूजन आने से पशु देर से नए दूध होता है तथा पशु में दूध नहीं बढ़ता है। इस रोग से बचाव के लिए सावधानी रखना जरूरी है। पशु को नियमित रूप से खनिज मिश्रण दें। जन्म के तुरन्त बाद (एक घंटे के अन्दर) बच्चों को खीस पिलायें। जेर को अपने आप हाथ से न खींचे तथा

पशु चिकित्सक की सलाह लें।

परजीवी :

पशुओं में प्राय: दो प्रकार के परजीवी होते हैं :-

1. आन्तरिक परजीवी, 2. बाह्य परजीवी।

परजीवियों के फैलने के कारण

परजीवी नवजात शिशु के अन्दर पानी व मां के दूध द्वारा जा सकता है, जैसे क्रमश: आंत के गोल कृमि व जूण इत्यादि। जूण मां के गर्भ में शिशु के अन्दर भी प्रवेश कर सकती है। घास व पानी को दूषित करके लीवर फल्यूक नामक परजीवी पशु में प्रवेश कर सकता है।

कृमिनाशक दवा खिलाते हुए

परजीवियों का पशु पर कुप्रभाव

- पशु में खून की कमी करना।
- दुधारू पशु में दूध की मात्रा घटाना।
- पशु के वजन में वृद्धि रोकना।
- पशु की पाचन शक्ति को खराब करके भूख कम करना।
- बड़ी संख्या में परजीवी का पशु में होना मृत्यु का कारण बन जाता है।
- समय पर दवा न देने पर परजीवी से ग्रसित पशु दूसरी बीमारियों को बढ़ावा दे सकता है जिनसे पशु का बचाव करना असम्भव हो सकता है।

1. आन्तरिक परजीवी :

खून में पाए जाने वाले 'सूक्ष्म कृमि', दस्त लगाने वाले 'गोल कृमि' व भैंस के बच्चों में जूण तथा 'पत्ता कृमि' आदि मुख्य आन्तरिक परजीवी हैं।

रोकथाम

समय-समय पर पशुओं के गोबर व खून की जांच करवानी चाहिए। आन्तरिक परजीवियों के बचाव हेतु पशु के स्वास्थ्य व वजन के मुताबिक पशु चिकित्सक की देखरेख में निम्न दवाओं को रोगी पशु को पिलायें। जन्म के 15 दिन तक, उसके बाद हर महीने (छह महीने की उम्र तक), साल में एक बार या जरूरत पड़ने पर, सार्वजनिक तालाब में जाने वाले पशु को साल में दो बार पिलायें।

क. जूण – पिपराजीन

ख. पानी उतारने वाले परजीवी – जेनिल

ग. दस्त वाले कृमि – बैनमिन्थ, पैनाक्योर आदि

2. बाह्य परजीवी

चीचड़ी, जूं, खुजली पैदा करने वाले परजीवी और घाव पर मक्खियों के नवजात शिशु आदि पशुओं में पाए जाने वाले बाह्य परजीवी हैं। बाह्य परजीवी पशु का खून चूसकर उसको नुकसान पहुंचाते हैं। एक चीचड़ 1 दिन में 1 भैंस का 1-1.5 ग्राम खून चूसता है जिससे पशु के सामान्य स्वास्थ्य व दूध के उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

रोकथाम

बाह्य परजीवियों के लिए जिनमें चीचड़ व जूं आदि आते हैं, मैलाथियोन, सुमिथियोन व ब्युटोकस आदि दवाइयों को निर्धारित मात्रा में घोलकर पशु पर तथा बांधने के स्थान पर छिड़कें। उपर्युक्त सभी उपायों के अलावा पशु घर की सफाई, सन्तुलित आहार व अन्य सावधानियां बरतने पर पशुओं में परजीवियों के कुप्रभाव को कम किया जा सकता है। पशुओं के बांधने की जगह, दीवारों एवं फर्श पर दरारें नहीं होनी चाहिएं।

पशुओं को रोग रहित रखने के लिए सावधानियां

- नए खरीदे गए पशुओं को कम से कम एक महीने तक दूसरे पशुओं से अलग रखें।
- संक्रामक रोग होने पर तुरन्त पशु चिकित्सक से सम्पर्क करें।
- हर साल अपने पशुओं की टी.बी., जे.डी. तथा ब्रूसेलोसिस नामक बीमारियों की जांच अवश्य करवायें तथा बीमार पशु को अलग रखें।

- पशुओं को साफ-सुथरे, हवादार गृह में रखें तथा उनको आयु, उत्पादन स्थिति तथा भार के अनुसार पूरा-पूरा स्थान उपलब्ध होना चाहिए।
- पशुओं को गर्मी व सर्दी से बचाकर रखें।
- पशुओं को पूर्ण व सन्तुलित आहार दें।
- पशुओं को फफूंद लगी पुआल न खिलायें, इससे डेगनाला रोग हो सकता है जिसमें पशु की पूंछ गिर जाती है।
- रोगी पशु को पानी तालाब से न पिलायें।
- रोगी पशु के बांधने के स्थान पर 5 प्रतिशत फिनाईल के घोल का छिड़काव करें।
- बीमार पशु का दूध बच्चों को न पिलायें।
- अपने पशुओं को गलघोटू, मुंह-खुर तथा ब्लैक क्वाटर नामक बीमारियों से बचाव के लिए पशु चिकित्सक की देखरेख में टीके लगवाना न भूलें।
- भूसा व खुरली में लोहे की कील, नट-बोल्ट, सुई, कांच इत्यादि जांच लें।
- बीमार पशु का दूध बाद में निकालें।
- बीमारी के समय अनजान व्यक्ति को पशुशाला में न आने दें।
- बीमार पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग रखें तथा इनकी देखभाल करने वाला व्यक्ति भी अलग से होना चाहिए।

समुचित प्रबन्धन

प्राय: किसान अपनी आर्थिक स्थिति को मद्देनजर रखते हुए किसी भी स्तर के पशु को खरीदकर उसका उचित प्रबन्ध करता है। यह प्रमाणित हो चुका है कि नया डेरी फार्म स्थापित करने के लिए पहले या दूसरे ब्यांत के पशु जो ज्यादा से ज्यादा 20 या 25 दिन की ब्याई हुई हो, ही खरीदनी चाहिए क्योंकि ऐसे पशु अधिक समय तक दूध देते हैं। इसके अतिरिक्त ठीक प्रकार की देखभाल एवं उचित प्रबन्धन से ही किसी भी डेरी उद्योग को सफल बनाया जा सकता है। उचित चयन के अतिरिक्त समुचित देखभाल एवं खानपान के बारे में जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है।

गाभिन पशुओं की देखभाल

गर्भ का समय ऐसा होता है जब मां को अपने शरीर के साथ-साथ शरीर में बढ़ रहे बच्चे का भी पोषण करना पड़ता है। अगर गाभिन पशु दूध भी दे रहा है तो उसको अधिक पोषक तत्वों की जरूरत पड़ती है। इसलिए गर्भकाल के दौरान मादा पशुओं की समुचित देखभाल करना अत्यन्त जरूरी है ताकि पैदा होने वाला बच्चा तंदुरूस्त हो और गाभिन पशु को किसी प्रकार की परेशानी का सामना न करना पड़े। गाभिन पशुओं की देखभाल करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

- गाभिन पशुओं को ब्याने से दो महीने पहले संतुलित आहार आवश्यकतानुसार खिलाना चाहिए।
- गाभिन पशुओं को नियमित रूप से चरागाहों में चरने के लिए ले जाना चाहिए लेकिन ब्याने से एक सप्ताह पहले पशुओं को चरागाहों में चरने के लिए बन्द कर देना चाहिए।
- गाभिन पशुओं का अधिक गर्मी व सर्दी से बचाव करना चाहिए।
- गाभिन पशुओं को ऐसे पशुओं से दूर रखना चाहिए जिनका गर्भपात हो चुका हो।
- पशुओं को गाभिन कराने की तारीख का लेखा-जोखा रखना चाहिए ताकि पशु के ब्याने की तारीख का अनुमान लग सके। गाय का गर्भकाल 280 दिन तथा भैंस का लगभग 310 दिन का होता है।
- गाभिन पशुओं को डराना, धमकाना, दौड़ाना व मारना आदि क्रियाएं नहीं करनी चाहिएं अन्यथा गर्भपात हो सकता है।
- अच्छे दुधारू पशुओं का ब्याने से दो महीने पहले दूध दुहना धीरे-धीरे बन्द कर दें ताकि मादा अपने शरीर की भरपाई एवं वजन में वृद्धि कर सके वरना अगले ब्यांत में दूध उत्पादन कम हो जाएगा।
- दुधारू पशु को अचानक शुष्क न करें तथा एक सप्ताह तक तूड़ी खिला कर रखें जिससे पशु का दूध उत्पादन काफी कम हो जाएगा। इसी प्रकार पहले दूध दो बार की जगह एक बार दूहें, फिर एक दिन छोड़कर, उसके बाद तीन दिन में एक बार तथा कुल 7 से 10 दिनों के बाद दूध दुहना बिल्कुल बन्द कर दें। थनों को अन्तिम बार दूध से खाली करके उनमें एन्टीबायोटिक दवाई चढ़वा दें या भर दें ताकि उनको थनैला रोग से बचाया जा सके।
- कम दूध देने वाले पशुओं को ब्याने से 40 दिन पहले शुष्क करना चाहिए तथा कमजोर एवं दुधारू पशुओं को कम से कम 80 दिन तक शुष्क रहना चाहिए। शुष्क कराने के तुरन्त बाद प्रचुर मात्रा में हरा चारा तथा संतुलित दाना मिश्रण देना चाहिए।
- ब्याने के 20 दिन पहले गाभिन पशुओं को दस्तावार आहार जैसे गेहूं का चोकर एवं खल 2:1 के अनुपात में 1-2 किलो प्रति दिन देना बहुत उपयोगी होता है।
- यदि प्रचुर मात्रा में अच्छी गुणवत्ता का हरा चारा उपलब्ध हो तो उपर्युक्त मिश्रण को अधिक जरूरत नहीं पड़ती। इसके अलावा साइलेज या 'हे' खिलाना भी अच्छा है।
- अगर कब्ज रहे तो आधा किलो अलसी का तेल नाल द्वारा पिलाया जा सकता है परन्तु इसे बार-बार नहीं देना चाहिए।
- पहली बार ब्याने वाली गाय को दो महीने पहले से उसके शरीर पर खुजली/सफाई प्यार से करनी चाहिए ताकि ब्याने के बाद पशु कोई समस्या न करे।
- पशु को ब्याने से पांच-छः दिन पहले अलग पशुघर में स्थानान्तरित कर देना चाहिए। ऐसे पशुओं की सावधानी

से निगरानी करनी चाहिए। प्रसव घर को साफ-सुथरा रखें तथा फर्श को फिनाईल (5 प्रतिशत घोल) से घोकर सुखा लें तथा तूड़ी या पराली बिछा दें। फर्श ऊंचा-नीचा तथा फिसलने वाला नहीं होना चाहिए।

- यदि पशु को ब्याने में कोई भी परेशानी हो रही हो तो तुरन्त नजदीक के पशु चिकित्सक से सम्पर्क करें तथा उसकी सलाह के अनुसार आगे की कार्यवाही करनी चाहिए।

प्रसवकाल के दौरान देखभाल

- प्रसव क्रिया शुरू होते ही पशु बेचैन हो जाता है, बार-बार उठता बैठता है तथा थोड़ा-थोड़ा करके बार-बार पेशाब करता है और योनि द्वार से श्लेष्मा निकलना इसका मुख्य लक्षण है।
- इस समय जल थैली बाहर निकलती है जिसे अपने आप ही फटने दें और पशु को अनावश्यक नहीं छेड़ना चाहिए। बच्चा पहले सामने के पैरों पर सिर टिकी अवस्था में बाहर आता है। कभी भी बच्चे को जोर लगाकर बाहर नहीं निकालना चाहिए। पशु को प्राकृतिक तौर पर ब्याने देना चाहिए।
- प्रसव के समय पशुशाला का वातावरण शांत होना चाहिए तथा वहां पर ज्यादा आदमी इकट्ठे नहीं होने चाहिएं।
- यदि प्रसव आमतौर पर चार-पांच घंटे में न हो तो अनुभवी पशु चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए।
- प्रसव के बाद योनि द्वार, पूंछ तथा योनि के आसपास के हिस्सों को गुनगुने पानी में लाल दवाई के घोल से साफ कर दें।
- जेर के बाहर आने का समय सामान्यत: 4-6 घंटे होता है तथा किसी-किसी पशु में यह समय 10-12 घंटे तक भी होता है।
- यदि जेर डालने में पशु ज्यादा समय ले तो तुरन्त पशु चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए या जेर निकलवानी चाहिए। ऐसे समय पर पशु को आधा लीटर गुनगुने पानी में 40 ग्राम (एक मुट्ठी) नमक का घोल पिलाने से भी पशु जेर जल्दी डाल देता है।
- बहुत से पशुपालक गांव के ही किसी आदमी से या स्वयं ही जेर निकालने का प्रयत्न करते हैं, इससे कई बार बहुत खून निकल जाता है और पशु के जनन अंगों में चोट आ जाती है तथा पशु को अगली बार गर्भ ठहरने में समस्या आ सकती है जिसके कारण बार-बार फिरती रहती है। इसलिए ऐसा बिल्कुल नहीं करना चाहिए। जेर रूकने के कई कारण हो सकते हैं, जैसे समय से पहले ब्याना, बच्चादानी में सूजन होना, मादा का कमजोर या बूढ़ा होना, असन्तुलित आहार खिलाना आदि।
- जेर को पशु खा सकता है इसलिए जेर को दूर जमीन में गाड़ देना चाहिए। यदि पशु जेर खा जाता है तो उसको अपच हो जाएगा और दूध उत्पादन कम हो जाएगा।
- प्रसव के बाद पहली बार पशु के थन से पूरा दूध नहीं निकालना चाहिए क्योंकि पूरा दूध निकलने से विशेषकर अधिक दूध देने वाले पशुओं को दूध-ज्वर होने का डर रहता है जिसमें पशु एक दम बैठ जाता है। ऐसा होने पर पशु चिकित्सक से तुरन्त सलाह लें।
- ब्याने के बाद पशु को पिलाने के लिए अजवायन मिला गुनगुना पानी दिये जाने से पेट की अच्छी तरह सफाई हो जाती है।
- ब्याने से पहले 250 ग्राम सरसों का तेल देना लाभकारी होता है तथा ब्याने के बाद निम्नलिखित पदार्थ देने चाहिएं।

गुड़	-	500 ग्राम
सौंठ	-	50 ग्राम
अजवायन	-	100 ग्राम
सौंफ	-	50 ग्राम
काला नमक	-	100 ग्राम

इसको 1.5 लीटर पानी में उबालकर सुबह व शाम पशु को पिलायें। इससे पशु का कड़ छंट जाएगा।

- 10-15 दिनों में धीरे-धीरे पशुओं को सामान्य आहार पर दूध उत्पादन के मुताबिक लाना चाहिए। तब तक सरलता से पचने वाला दस्तावर चारा, दाना देना चाहिए।

दुधारू पशुओं की देखभाल :

- दुधारू पशु खरीदते समय यह जानना जरूरी है कि उन्हें विभिन्न बीमारियों से बचाव का टीका लगा है या नहीं। यदि नहीं लगा हो तो उन्हें बचाव का टीका अवश्य लगवायें।

- दुधारू पशुओं के रहने का बाड़ा साफ-सुथरा तथा हवादार होना चाहिए एवं गर्मी-सर्दी से बचाव का उपाय भी अत्यन्त आवश्यक है, इससे पशु का स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा और दूध की मात्रा भी ज्यादा मिलेगी।
- दूध निकालने से पहले पशुओं की सफाई करनी जरूरी है। इससे पशुओं को भूख अच्छी लगती है तथा दूध का उत्पादन भी ज्यादा होता है।
- भैंसों को खासकर गर्मी के मौसम में दोपहर तथा दूध निकालने से पहले सुबह-शाम नहलाया जाए तो अधिक दूध मिलता है तथा उसके गर्मी में आने के लक्षण भी आसानी से पहचाने जा सकते हैं। दूध निकालने से पहले नहलाना स्वच्छ दूध के उत्पादन में भी लाभकारी होता है।
- प्रतिदिन दूध निकालने का समय एक ही होना चाहिए।
- दुधारू पशुओं को उनकी जरूरत के अनुसार संतुलित आहार देना चाहिए।
- सस्ते दूध उत्पादन के लिए इन पशुओं को अपने फार्म पर उगाये गए हरे चारे की मात्रा अधिक से अधिक उपलब्ध करवानी चाहिए। कम से कम 20 कि.ग्राम हरा चारा प्रति पशु प्रति दिन अवश्य दें।
- आमतौर पर किसान अपने घर में उपलब्ध दाने को ही पशुओं को खिलाते हैं परन्तु खनिज मिश्रण तथा नमक खिलाने बारे ध्यान नहीं देते हैं। इन पशुओं को खनिज मिश्रण तथा साधारण नमक अवश्य दें, इससे दूध का उत्पादन ज्यादा होता है तथा प्रजनन सम्बन्धी कोई भी समस्या नहीं होती। खनिज मिश्रण 30-50 ग्राम व नमक 20-25 ग्राम प्रतिदिन दें।

दुधारू पशुओं के लिए दाने के कुछ मिश्रण तालिका 1 व दुधारू पशुओं के लिए पूर्ण आहार तालिका 2 में दर्शाये गये हैं।

नवजात बच्चों की देखभाल :

- बछड़े या बछड़ी की देखरेख असल में उसके जन्म से पूर्व ही मां के गर्भ से शुरू हो जाती है। इसलिए पशु के ब्याने से 3-4 महीने पहले ही उसको आवश्यकतानुसार चारा-दाना देना चाहिए।
- नवजात पशु के नाक व मुंह से श्लेष्मा को निकाल देना चाहिए ताकि वह ठीक रूप से सांस ले सके।
- यदि नवजात पशु सामान्य रूप से सांस न ले रहा हो तो पिछले घुटने को पकड़कर उल्टा लटका दें ताकि श्लेष्मा या बलगम अपने आप बाहर निकल जाए।
- नाक में घास की पत्ती डालने से पशु छींकने लगता है और श्लेष्मा नाक से बाहर आने लगती है।
- नवजात बच्चे के शरीर को सूती कपड़े या बोरी से साफ कर देना चाहिए ताकि शरीर पर लगी जेर आदि साफ हो जाए।
- इसके बाद बच्चे को मां के पास छोड़ दें। मां उसे चाटकर साफ व सूखा कर देती है। यदि गाय बच्चे को न चाटे तो बछड़े या बछड़ी के शरीर पर थोड़ा नमक छिड़क दें जिससे गाय बच्चे को चाटना शुरू कर देगी।
- शरीर चाटने से बच्चे को सांस लेने में सहायता मिलती है। आमतौर पर नाभि सूत्र अपने आप टूट जाती है। वहां पर टिंकचर आयोडीन अवश्य लगायें।
- अगर नाभि सूत्र जुड़ी हुई हो तो उसे नए ब्लेड से 3-4 इंच रखकर काट दें और स्वच्छ धागे से बांधकर उस पर टिंकचर आयोडीन एक सप्ताह तक लगातें रहें।
- नवजात शिशु को जन्म के तुरन्त या आधे घंटे बाद ही खीस खिलानी चाहिए, क्योंकि खीस में गामा ग्लोब्यूलीन होता है, जो बछड़ों को कई प्रकार की बीमारियों से बचाता है। खीस में विटामिन व खनिज तत्व भी ज्यादा होते हैं।
- खीस दिन में 3-4 बार उसके शारीरिक वजन के दसवां भाग की दर से पिलाना चाहिए।

नवजात शिशु

तालिका 1. दुधारू पशुओं के लिए दाने के कुछ मिश्रण

	मात्रा (कि.ग्राम) प्रति 100 कि.ग्राम मिश्रण			
आहार	1	2	3	4
मक्का/जौ/जई	40	30	25	27
गेहूं का चौकर	32	30	25	25
मुंगफली की खली	25	22	22	20
बिनौले की खली	–	15	–	–
बिनौला	–	–	–	25
चना	–	–	25	–
खनिज मिश्रण	2	2	2	2
खाने का नमक	1	1	1	1

तालिका 2. दुधारू पशुओं के लिए आहार (जीवन निर्वाह एवं 10 किलो दूध उत्पादन हेतु मात्रा कि.ग्राम में)

	मात्रा			
आहार	1	2	3	4
रिजका/बरसीम	60	–	–	–
हरी जई	–	50	–	–
हरी मक्का/ज्वार/बाजरा	–	–	35	–
तूड़ी/कड़वी	3	–	–	7
दाने का मिश्रण	1	2	3	6

- अगर किसी कारणवश मां मर गई हो या दूध नहीं दे रही हो तो उस हालात में बछड़े को एक पाव गुनगुना दूध, एक ग्राम खनिज मिश्रण, दो कच्चे अण्डे तथा थोड़े से विटामिन का घोल बनाकर पिलायें।
- अगर पड़ोस में कोई गाय-भैंस ब्याई हो तो उसका खीस लेकर जिस बच्चे की मां दूध न दे या मर गई हो, उसको पिलाएं।

नवजात शिशु को खीस पिलाना

- अगर बच्चे को उसकी मां से अलग रखना है तो उसे तीन दिन तक खीस पिलाकर मां से अलग कर दें। आधा चम्मच अरण्डी का तेल पिलाना चाहिए।
- नवजात पशु को साफ-सुथरे व हवादार घर में रखें तथा फर्श पर बिछावन जरूर होना चाहिए। ठंडी हवा व खराब मौसम से बचाकर गर्म स्थान पर रखें ताकि उसे निमोनिया न हो।
- बच्चे की 7 से 15 दिन की उम्र के बीच कृमिनाशक दवा दें। फिर 6 महीने की आयु तक 1 महीने के अन्तराल पर कृमिनाशक दवा देते रहना चाहिए।

दूध छुड़ाई (वीर्निंग)

यह वह प्रणाली है जिसमें बच्चे का पालन-पोषण उसकी मां का दूध चुंघाये बिना किया जाता है अर्थात बच्चे को मां के थनों द्वारा दूध नहीं पिलाया जाता है। इस प्रणाली के दो ढ़ंग हैं:

1. बच्चे को थोड़े समय उसकी मां के थनों से दूध पीने के लिए छोड़ते हैं, जिससे दूध उतर सके।

2. बच्चे को जन्म से ही मां से अलग कर देते हैं। यह तरीका गांवों में नहीं अपनाया जाता है और केवल संगठित डेयरी फार्मों व सेना के डेयरी फार्मों में ही अपनाया जाता है।

दूध छुड़ाई (वीनिंग) के लाभ

1. किसी कारणवश बच्चे की मृत्यु से मादा के दूध उत्पादन पर कुप्रभाव नहीं पड़ता।
2. मादा पशु के दूध उत्पादन का रिकार्ड सही रखा जा सकता है, जिसके आधार पर इस पशु का राशन निर्धारित किया जा सकता है।
3. बच्चे के पालन-पोषण का खर्च कम किया जा सकता है।
4. दांतों के लगने से थनों पर कई बार घाव हो जाते हैं इससे थनों को बचाया जा सकता है।
5. मादा पशु नियमित रूप से गर्भित हो जाती है।

इस प्रणाली (वीनिंग) वाले गाय व भैंस के बच्चों को दूध के साथ मिल्क रिपलेसर भी दिया जाता है। बच्चों को मिल्क रिपलेसर पिलाते समय कम से कम 1 किलोग्राम दूध प्रतिदिन अवश्य पिलायें। बच्चों को 10 दिन की उम्र के बाद ही मिल्क रिपलेसर या प्रवर्तक पिलाना शुरू करना चाहिए। ध्यान रहे कि मिल्क रिपलेसर की मात्रा धीरे-धीरे बढ़नी चाहिए।

इसके पश्चात् मादा बच्चों को 1-1.5 किलोग्राम दाना तथा अच्छी प्रकार का चारा खिलाकर पालना चाहिए। ऐसा करने से उनके पहले ब्यांत की आयु कम की जा सकती है। इसके अतिरिक्त जो सुझाव दुधारू पशु के उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिए दिये गये हैं वह सभी प्रबन्ध बड़ी कट्टियों पर भी करने चाहिएं।

पहचान नम्बर देना

एक सप्ताह की उम्र होने पर बच्चों के कान में नम्बर लगाना जरूरी है जिसे टैटुइंग कहते हैं। बच्चों को आसानी से पहचानने तथा उनका सही रिकार्ड रखने के लिए यह जरूरी प्रक्रिया है। छोटे फार्म पर तो बच्चों को पहचाना जा सकता है लेकिन बड़े फार्मों पर बच्चों की पहचान व रिकार्ड रखने में दिक्कत आती है। इसके लिए टैटूइंग मशीन का प्रयोग करते हैं। कान की अन्दर वाली सतह को कीटाणुरहित करके तथा टैटूइंग स्याही लगाकर टैटूइंग मशीन में नम्बर लगाकर व इन नम्बरों पर भी टैटूइंग स्याही लगाकर कान पर दबाते हैं जिससे कान के अन्दर नम्बर गोद दिया जाता है। दबाते वक्त ध्यान रखना जरूरी है कि उस जगह पर रक्तनलिकायें न हों वरना खून ज्यादा बहेगा।

सींग रहित करना :

जब बच्चे 10-15 दिन की उम्र के हो जायें तो उन्हें सींगरहित करना जरूरी है। सींग रहित करने से पशु आपस में लड़ते वक्त एक दूसरे को चोट नहीं पहुंचाते, सुन्दरता बढ़ती है क्योंकि कई बार सींग गन्दे ढ़ंग से निकलकर पशु की सुन्दरता कम करते हैं और देखभाल करने वालों की भी सुरक्षा बढ़ती है एवं सुविधापूर्वक पशुओं की देखरेख की जा सकती है। सींग टूटने से होने वाली असुविधा तथा खर्चे से भी बचा जा सकता है। भैंसों में सींगरहित करने का प्रचलन कम है क्योंकि सींगों से नस्ल की पहचान होती है तथा नर भैंसों में भी सींग देखकर ही नस्ल की पहचान करते हैं।

बरसात के मौसम में जब मक्खी मच्छर ज्यादा हो तो तब इस प्रक्रिया को नहीं अपनाना चाहिए। सींगरहित करने के लिए जड़ के आसपास गोलाई में बाल साफ करके उस स्थान को कीटाणुरहित कर लें। आजकल बिजली से चलने वाला यन्त्र प्रयोग किया जाता है। इस यन्त्र द्वारा आसानी से व कम समय में सींग रहित किया जा सकता है। सींग रहित करने के बाद दोनों सींगों की जगह पर एन्टीसैप्टिक क्रीम तब तक लगायें जब तक कि जख्म ठीक न हो जाए। जख्म ठीक होने तक इस जगह को भीगने न दें।

पहचान नम्बर लगाना :

जब बच्चे बड़े हो जाएं (एक से डेढ़ साल की उम्र) तो उनको बायीं जांघ पर नम्बर लगाते हैं। इसके लिए लोहे की सलाखों के आगे नम्बर बना लेते हैं। इन सलाखों को गर्म करके लाल करते हैं तथा कम दबाव के साथ सिर्फ 3-4 सैंकिण्ड के लिए बायी जांघ पर रखते हैं। नम्बर लगाने के तुरन्त बाद जिंक आक्साईड मिले सरसों के तेल को जली हुई खाल पर लगाते हैं। इसके बाद पशुओं को साफ एवं सूखी जगह पर रखते हैं और प्रतिदिन जिंक आक्साईड मिले सरसों के तेल को तब तक लगाते हैं जब तक जख्म ठीक न हो जाएं। दागने का कार्य भी बरसात के दिनों में नहीं करना चाहिए तथा दागे हुए पशुओं को मक्खियों व कौओं आदि से बचा कर रखना चाहिए।

तालिका 3. तीन माह की आयु तक बच्चों के खानपान का प्रबन्ध

बच्चों की आयु (सप्ताह)	दूध (मि.ली.)	क्रीम निकला हुआ दूध (मि.ली.)	बच्चों का दाना (प्रवर्तक) (ग्राम)	अच्छी प्रकार का हरा चारा (ग्राम)
1-3 दिन	2500 (खीस)	-	-	-
4-7 दिन	2500	-	-	-
2 सप्ताह	3000	-	50	250
3 सप्ताह	3250	-	100	350
4 सप्ताह	3000	-	300	500
5 सप्ताह	1500	1000	400	550
6 सप्ताह	-	2500	600	600
7 सप्ताह	-	2000	600	600
8 सप्ताह	-	1750	700	700
9 सप्ताह	-	1250	1000	1000
10 सप्ताह	-	-	1200	1100
11 सप्ताह	-	-	1300	1200
12 सप्ताह	-	-	1400	1400

बछड़ों की देखभाल

तकरीबन 20 प्रतिशत बच्चे (काफ) तीन माह की आयु तक मर जाते हैं। इसके मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :-

1. सर्दी-गर्मी से न बचाना।
2. निमोनिया हो जाना।
3. दस्त लग जाना।
4. पेट में कीड़ों का होना।
5. खुराक की कमी होना।
6. अनुपयुक्त घर, अनुचित खान-पान तथा अव्यवस्था।

बच्चों को जरूरत से ज्यादा खिलाना भी उतना ही नुकसानदायक है जितना कि कम खिलाना। क्योंकि कम खिलाने से पहला बच्चा देने की उम्र बढ़ जाती है। पहली बार गर्भधारण के समय मादा के शरीर का औसतन भार 200-250 किलोग्राम होना चाहिए। अधिक खिलाने से पशु ज्यादा मोटा हो जाता है जिससे प्रजनन क्रिया एवं उत्पादन पर उल्टा प्रभाव पड़ता है। पशुओं को प्रतिदिन खरहरा करना चाहिए जिससे त्वचा में खून का संचार बढ़ जाता है तथा जूएं आदि परजीवी बालों से गिर जाते हैं। 3 महीने की उम्र तक बच्चे के वजन का 1/10 भाग दूध अवश्य पिलायें। उसके बाद दाना मिश्रण व हे खिलायें। हरा चारा व सूखा चारा इच्छानुसार खिलायें तथा 1-1.5 किलो दाना मिश्रण वजन के अनुसार दो साल की उम्र तक अवश्य दें।

नर पशुओं का बधियाकरण

नर पशुओं जैसे घोड़ों, बैलों का बधियाकरण वर्षों से किया जाता रहा है। शुरू-शुरू में बधियाकरण के तरीके एवं विधियां बहुत अच्छी एवं वैज्ञानिक नहीं थी। बधियाकरण के उद्देश्य नर पशुओं को शांत तथा शरीफ बनाना और आसानी से काबू करना आदि होते हैं। इसके साथ ही वर्तमान युग में बधियाकरण का प्रमुख उद्देश्य पशुओं की नस्ल सुधारना है। वर्तमान समय में पौष्टिक खाद्य पदार्थों की पूर्ति का साधन दूध ही है। दूध उत्पादन मुख्यत: प्रजनन व उचित प्रबन्धन पर निर्भर करता है। पशुपालकों द्वारा उचित प्रबन्धन के बावजूद भी दूध उत्पादन बहुत कम है। इसका प्रमुख कारण भारतीय पशुओं में दूध उत्पादन क्षमता का कम होना है। इस कमी को बेहतर प्रजनन प्रबन्धन द्वारा सुधारा जा सकता है। प्रजनन में सबसे बड़ी बाधा है निकृष्ट एवं घटिया किस्म के सांडों द्वारा मादाओं को ऋतुकाल में गर्भित कराना। घटिया किस्म के सांडों द्वारा गर्भित कराने पर घटिया संतान ही पैदा होती है जिनकी दूध उत्पादन क्षमता बहुत कम होती है। इस पर काबू पाने के लिए बधियाकरण एक आवश्यक उपाय है। बन्द विधि बधियाकरण की प्रमुख विधि हैं। यह विधि बगैर आप्रेशन के बधिया करने की विधि है। पहले बधिया करने के लिए बिस्चुरनेज (टेस्टिस एवं स्परमैटिक कोर्ड को बिस्चुरी से

दबाना) एवं मार्टिलेज (टेस्टिस व स्परमैटिक कोर्ड को कलैम्प से पकड़कर लकड़ी के हथौड़े से पीटना) आदि थी। ये दोनों विधियां कष्टदायी तथा अमानवीय हैं।

बर्डिजो कास्ट्रेटर द्वारा बधिया करना एक आधुनिक एवं सरल विधि है तथा आजकल प्रचलन में है। इस विधि में न तो जख्म होता है और न ही खून निकलता है। इस विधि में दोनों टैस्टिकल्स की स्परमैटिक कोर्ड को अण्डकोष से 3-5 सेंमी. उपर की ओर 10-15 सैकिण्ड तक बर्डिजो कास्ट्रेटर द्वारा दबा देते हैं। इसी प्रकार पहले स्थान से एक सें.मी. हटकर कोर्ड को फिर दबाया जाता है। दबाये गये स्थानों पर कीटाणुनाशक दवाई लगा देते हैं। बधिया करने हेतु नर पशु की उम्र एक साल के लगभग तथा बधिया करने का उचित समय जनवरी से मार्च या अक्तूबर-नवम्बर के महीने हैं।

शरीर भार

नवजात शिशु के जन्म के समय तथा उसके बाद छः महीने की उम्र तक प्रति माह उनका वजन लेना चाहिए। शरीर भार मापने से पता चल जाता है कि बच्चों में उचित वृद्धि दर हो रही है या नहीं। क्योंकि पशुओं को जरूरत से ज्यादा खिलाना भी उतना ही नुकसानदायक है जितना कि कम खिलाना। कम खिलाने से प्रथम बच्चा देने की आयु बढ़ जाती है। पहली बार गर्भधारण के समय बहडियों व झोटियों का औसतन भार क्रमशः 200-250 किलोग्राम तथा 275-300 किलोग्राम होना चाहिए। इसके विपरीत अधिक खिलाने से पशु जरूरत से ज्यादा मोटा हो जाता है जिससे प्रजनन एवं उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

पशुओं की आयु का पता लगाना

पशुओं की उम्र का पता उसके दांतों और सींगों से किया जा सकता है। पशु चयन, खरीदने व बेचने के लिए उम्र का सही अन्दाजा लगाना पशुपालन का अहम् भाग है। सींग के छल्लों की संख्या के आधार पर पशु की उम्र का पता लगाते हैं क्योंकि एक गर्भकाल में पशु के सींग के नीचे एक छल्ले जैसी रचना बनती है तथा पशु की उम्र का अन्दाजा लगाने के लिए छल्लों की संख्या में 3 या 4 जोड़ देते हैं क्योंकि 3 या 4 साल की उम्र में पशु पहली बार ब्याता है। प्रौढ़ पशुओं में सींग लम्बे व चपटे हो जाते हैं। लेकिन यह उम्र का पता लगाने का सही तरीका नहीं है क्योंकि पशु की प्रथम ब्यांत की उम्र तथा दो ब्यातों के बीच के समय का अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता।

दांतों को देखकर ही पशु की उम्र का सही अन्दाजा लगाना चाहिए। गांव व भैंसों के मुंह में सामने के कर्तन (इनसीजर) दांतों से उनकी उम्र का पता लगाया जा सकता है। प्रौढ़ पशु के मुंह के ऊपरी जबड़े में कर्तन दांत नहीं होते परन्तु एक तरफ तीन अग्र दाढ़ एवं तीन दाढ़ होते हैं जबकि निचले जबड़े में एक तरफ चार कर्तन दांत, तीन अग्र दाढ़ व तीन दाढ़ होते हैं।

उम्र	दांतों की संख्या	उम्र	दांतों की संख्या
जन्म के समय	2 दूध के दांत	**गाय**	
7 दिन	4 दूध के दांत	2.2 वर्ष	2 पक्के कर्तन दांत
15 दिन	6 दूध के दांत	3 वर्ष	4 पक्के कर्तन दांत
30-45 दिन	8 दूध के दांत	4 वर्ष	6 पक्के कर्तन दांत
5-6 महीने	पहला जोड़ा दाढ़	5 वर्ष	8 पक्के कर्तन दांत
15-16 महीने	दूसरा जोड़ा दाढ़		
24-28 महीने	तीसरा जोड़ा दाढ़		
भैंस			
2-3 वर्ष	2 पक्के कर्तन दांत		
3-4 वर्ष	4 पक्के कर्तन दांत		
4-5 वर्ष	6 पक्के कर्तन दांत		
5-6 वर्ष	8 पक्के कर्तन दांत		

इसके बाद मध्यम, दूसरे, तीसरे व चौथे कर्तन दांत क्रमशः 6 से 7, 8 से 9 एवं 11 सालों में घिस जाते हैं।

स्वच्छ एवं स्वस्थ दूध उत्पादन

स्वच्छ एवं स्वस्थ दूध से अभिप्राय है वह दूध जो स्वस्थ पशु से निकला हो, देखने में साफ लगे और कीटाणुरहित एवं स्वास्थ्यवर्धक हो। ऐसे दूध का उत्पादक एवं उपभोक्ता के लिए बहुत महत्व है। पशु से दूध आमतौर पर स्वच्छ एवं स्वस्थ निकलता है, लेकिन दूध निकालने वाले व्यक्ति की लापरवाही व अज्ञानता के कारण दूध संक्रमित हो जाता है। संक्रमित दूध जल्दी खराब हो जाता है तथा यह दूध दूरस्थ शहरों के उपभोक्ताओं तक ठीक से नहीं पहुंच पाता और उत्पादक तथा राष्ट्र को आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है। दूषित दूध से उपभोक्ता कई बार भयंकर बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। प्रायः देखने में आया है कि दूध निकालने वाला व्यक्ति आमतौर पर जल्दी करता है और छोटी-छोटी परन्तु महत्वपूर्ण बातों की तरफ ध्यान नहीं देता। वह आमतौर पर यह बहाने बनाता है :-

- मुझे पता नहीं यह जरूरी है।
- मेरे पास समय कम है।
- मैं जल्दी में होता हूं।
- मुझे सही बातों का ज्ञान नहीं है।
- मैं सोचता हूं घर का कोई और सदस्य इन बातों की तरफ ध्यान देता है।

उद्देश्य एवं लाभ

- दूध लम्बे समय तक खराब नहीं होता।
- दूरस्थ ग्रामीण इलाकों से शहरी उपभोक्ताओं तक ठीक दूध भेजना।
- दूध को मानव स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त बनाना।
- छोटे कटड़े-कटड़ियों व मां के स्वास्थ्य का ध्यान रखना।
- दूध से होने वाली भयंकर बीमारियों जैसे तपेदिक आदि को रोकना।
- अच्छी गुणवत्ता वाले दूध उत्पाद तैयार करना।
- दूध उत्पादक को उसके दूध की अच्छी कीमत दिलवाना।

स्वच्छ व स्वस्थ दूध उत्पादन के लिए कुछ महत्वपूर्ण बातें

इन बातों की तरफ ध्यान देना अति आवश्यक है तथा इसके लिए दूध उत्पादक को किसी मंहगे औजार एवं पूंजी की आवश्यकता नहीं होती बल्कि थोड़ी सूझबूझ रखकर इन छोटी-छोटी लेकिन अति महत्वपूर्ण बातों की ओर ध्यान देकर स्वच्छ व स्वस्थ दूध उत्पादन किया जा सकता है। इसके लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए।

1. स्वस्थ पशु

स्वच्छ एवं स्वस्थ दूध उत्पादन का आधार स्वस्थ पशु है। दूध के अन्दर किसी भी प्रकार की बीमारी के कीटाणु नहीं होने चाहिएं। अस्वस्थ पशु से उत्पादित दूध में काफी संख्या में कीटाणु, जीवाणु व विषाणु पाये जाते हैं। पशुपालकों को बीमारी रहित पशु पालने चाहिएं तथा तपेदिक, ब्रुसेलोसिस, जे. डी. इत्यादि भयंकर बीमरियों का अपने पशुओं में नियमित परीक्षण करवाना चाहिए। कमजोर पशु आमतौर पर रोगों से जल्दी ग्रस्त हो जाते हैं क्योंकि उनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है जिससे दूध की गुणवत्ता पर बुरा असर पड़ता है। बीमार पशुओं को अलग रखकर उनका तुरन्त उपचार करवाना चाहिए।

स्वच्छ एवं स्वस्थ आयन

2. स्वस्थ ग्वाला

दूध की गुणवत्ता दूध निकालने वाले व डेयरी फार्म पर काम करने वाले मजदूरों के स्वास्थ्य पर भी निर्भर करती है। दूध निकालने वाला व्यक्ति स्वस्थ होना चाहिए तथा विभिन्न संक्रामक बीमारियों जैसे तपेदिक, टायफाईड (मियादी बुखार), हैजा, डिफ्थिरिया, पेचिश व पीलिया इत्यादि से ग्रसित नहीं होना चाहिए। उनकी आदतें साफ व स्वच्छ होनी चाहिएं जैसे

उनको दूध निकालते समय थूकना, धूम्रपान करना इत्यादि गन्दी आदतें नहीं होनी चाहिएं। उसके नाखून कटे हुए तथा शरीर, कपड़े व हाथ साफ-सुथरे व सूखे होने चाहिएं। पशुओ के प्रति उनका व्यवहार दयालु व दोस्ताना होना चाहिए तथा उसे स्वस्थ व स्वच्छ दूध उत्पादन का ज्ञान होना चाहिए।

3. स्वच्छ पशुशाला

स्वच्छ व स्वस्थ दूध उत्पादन के लिए पशुशाला साफ, सूखी, गर्द-रहित, आरामदायक व हवादार होनी चाहिए। उसके अन्दर व आसपास दुर्गन्ध नहीं होनी चाहिए। दूधशाला का फर्श समतल, पक्का, फिसलन रहित व खुरदरा हो एवं पानी व मलमूत्र की निकासी की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। पशुशाला व दूधशाला की नियमित रूप से सफाई होनी चाहिए। मक्खी व मच्छरों को रोकने के लिए उचित दवाई का स्प्रे होना चाहिए। दूध निकालते समय धूल भरा चारा पशुओं को नहीं खिलाना चाहिए क्योंकि धूल में अनेक प्रकार के हानिकारक कीटाणु व विषाणु होते हैं जो दूध की गुणवत्ता पर बुरा असर डालते हैं।

4. कीटों से बचाव

गर्मी व बरसात के मौसम में घरेलू मक्खी, मच्छर तथा अन्य कीट बहुत अधिक संख्या में पैदा होकर दूध निकालने के उपरान्त दूध को संक्रमित कर, उसे अस्वस्थ और अस्वच्छ बना देते हैं। कीटों पर पूर्ण नियन्त्रण रखने के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए।

- पशुशाला व दूधशाला को साफ व सूखा रखें।
- दूधशाला के दरवाजे जालीदार होने चाहिएं।
- दरवाजे अपने आप बन्द होने वाले होने चाहिएं।
- खाद के गड्ढ़े व मलनिकासी पर नियमित रूप से कीटनाशक दवा का छिड़काव करते रहना चाहिए।
- दूधशाला को हवादार रखने के लिए रोशनदानों व बिजली के पंखों का इस्तेमाल करें क्योंकि फर्श जल्दी सूखने से मक्खियां दूर रहती हैं और पशुओं को आराम मिलता है।
- गोबर को पशुशाला से जल्दी से जल्दी बाहर निकालें।
- दूध निकालने के तुरन्त बाद पशुशाला की समुचित सफाई करें।
- गोबर के गड्ढ़े या बायोगैस संयंत्र दूधशाला से दूर होने चाहिएं।

5. पशु की तैयारी

दूध निकालते समय दूध में संक्रमण मुख्यतया पशु के शरीर से होता है इसलिए पशु की प्रतिदिन खुरे से सफाई करनी चाहिए ताकि धूल, मिट्टी, टूटे हुए बाल व गोबर इत्यादि दूध में गिरकर दूध को खराब न करें। खुर्रा लगाने से पशुओं में रक्त का संचार बढ़ता है तथा चमड़ी नर्म व चमकीली रहती है। पशु की दूध निकालने वाली साईड के बढ़े हुए बालों को ल्योटी के पास से काट देना चाहिए ताकि पशु के बाल दूध में न गिरें। पशु की ल्योटी व थनों को साफ तौलिए या कपड़े से साफ करना चाहिए। सर्दी के मौसम में ताजे पानी व जीवाणुरोधक दवाइयों से थनों व ल्योटी की सफाई करनी चाहिए। इससे न केवल दूध संक्रमित होने से बचेगा बल्कि पशुओं में होने वाले संक्रामक रोग जैसे थनैला इत्यादि से पशु का बचाव भी सम्भव हो सकेगा।

अयन व थनों की सफाई

6. दूध निकालने का उचित तरीका

दूध उत्पादन की मात्रा व गुणवत्ता दूध निकालने के तरीके पर भी निर्भर करती है। दुधारू पशुओं में दूध उतारने के लिए जिम्मेदार हार्मोन का प्रभाव 6-7 मिनट तक रहता है इसलिए

इतने समय में सारा दूध निकाल लेना चाहिए। पूरा दूध न निकालने से पशुओं के ब्यांत का कुल दूध उत्पादन कम होता है तथा थनों में बचा हुआ दूध, दूध बनाने वाली कोशिकाओं पर बुरा प्रभाव डालता है और ये कोशिकाएं दूध बनाना बन्द कर देती हैं जिससे दूध उत्पादन कम हो जाता है। आमतौर पर दूध निकालने वाले व्यक्ति थनों व अपने हाथों को दूध या पानी से गीला करके दूध निकालते हैं जो पूर्णतया गलत है। इससे न केवल संक्रमण होता है बल्कि पशुओं के थन व ल्योटी खराब हो जाती हैं। गीले हाथों से दूध निकालने से थन कठोर होकर फट जाते हैं जो पशुओं के लिए कष्टदायी होते हैं तथा थनैला रोग व दूसरी समस्याओं के होने का अंदेशा बढ़ जाता है। दूध निकालने के लिए कई तरीके अपनाए जाते हैं लेकिन ज्यादातर ग्वाले अंगूठा अन्दर करके दूध निकालते हैं। इससे पशुओं को दर्द होने के कारण उनमें चिड़चिड़ापन बढ़ता है तथा थन चोटग्रस्त होकर खराब हो जाते हैं। पूरा दूध निकालने के लिए अंगूठा

पूर्ण हस्त विधि द्वारा दूध निकालना

बाहर रखकर पूर्ण-हस्त विधि से दूध निकालने का तरीका अपनाना चाहिए। दूध निकालते समय थनों को नीचे की तरफ खींचकर झटके नहीं मारने चाहिएं। दूध सही समय पर, आराम से, तेज गति, चुपचाप व पशु को बिना भयभीत किये निकालना चाहिए। पशुओं को डराने से पूरा दूध नहीं मिल पाता।

7. दूध के बर्तन

अस्वच्छ दूध के बर्तन, स्वच्छ व स्वस्थ दूध को बहुत जल्दी दूषित कर देते हैं जिससे दूध खट्टा होकर खराब हो जाता है। बर्तनों की सफाई निम्न प्रकार से नियमित रूप से करनी चाहिए :-

- बर्तनों को दूध निकालने के तुरन्त बाद साफ पानी से धोयें ताकि दूध बर्तनों पर चिपका न रहे।
- दूध वाले बर्तन टीन, स्टील या एल्यूमीनियम के बने होने चाहिएं तथा इनकी सतह समतल होनी चाहिए। इन बर्तनों को निम्नलिखित योगिकों से बने पाउडर से धोना चाहिए।

अंश का नाम	पाऊड़र-1	पाऊड़र-2
रेह	850 ग्राम	850 ग्राम
ट्राईसोडियम फास्फेट	100 ग्राम	100 ग्राम
सोडियम फास्फेट	50 ग्राम	50 ग्राम
आइडैट-10	20 ग्राम	20 ग्राम
कीटाणुनाशक रसायन	-	20 ग्राम

- बर्तनों को गर्म पानी से धोयें।
- अगर हो सके तो दूध निकालने वाले बर्तनों को दो मिनट तक उबलते हुए पानी में डालें।
- धोने के बाद बर्तनों को उल्टा करके सुखा लें।
- दूध निकालने से पहले भी एक बार फिर बर्तन को साफ पानी से धोयें।
- दूध के बर्तन जंगरोधी, दूध में अघुलनशील, कम घिसने वाले, हल्के लेकिन मजबूत व टिकाऊ, कम कीमत व आसानी से साफ होने वाले होने चाहिएं।

8. दूध को छानना

उपर्युक्त सावधनियों के बाद भी दूध में कुछ मात्रा में बाल, धूल, मिट्टी, गोबर व भूसा इत्यादि के कण आ जाते हैं। इसलिए दूध को साफ करने के लिए इसको छानना आवश्यक

हो जाता है। दूध को साफ मलमल के कपड़े से छानना चाहिए तथा छानने के बाद कपड़े को गर्म पानी व साबुन से धोना चाहिए। गन्दा कपड़ा भी दूध को संक्रमित करता है। घरों में दुग्ध उत्पादक चाय छानने वाली छलनी से भी छान सकते हैं।

9. दूध का भण्डारण

दूध निकालने के तुरन्त बाद दूध के बर्तन को दूधशाला से बाहर रख दें। दूध से भरे बर्तन को साफ कपड़े से ढ़ककर रखें ताकि बाहर से आने वाली धूल, मिट्टी के कण, कीटाणु व अन्य जीव जन्तु दूषित न कर सकें। दूध के सुरक्षित भण्डारण के लिए या तो उसको गर्म करें ताकि दूध में उपस्थित कीटाणु खत्म हो जाएं या दूध को तुरन्त ठण्डा कर दें ताकि कीटाणुओं की वृद्धि रूक जाए।

10. घर में दूध की देखभाल

यदि डेयरी से घर में उपभोग हेतु आए दूध की देखभाल ठीक प्रकार से न की जाए तो दूध का पौष्टिक मूल्य धीरे-धीरे कम हो जाता है। दूध सूक्ष्म जीवाणुओं की एक अच्छी खुराक है। यह जीवाणु उस समय दूध में प्रवेश करते हैं जब दूध दुहने में गंदे बर्तन तथा गंदे हाथों का प्रयोग होता है। पशु के गंदे शरीर तथा हवा के माध्यम से भी वह दूध में पहुंच सकते हैं। इन जीवाणुओं में से कुछ तो मनुष्य के लिए हानिकारक होते हैं तथा बीमारियां फैला सकते हैं और कुछ दूध को बहुत जल्दी खराब कर देते हैं। अतः दूध को सुरक्षित रखने के लिए कुछ व्यावहारिक बातों को ध्यान में रखना जरूरी है जिनसे दूध को घर में अधिक समय तक सुरक्षित तथा सुस्वादयुक्त रखा जा सकता है।

दूध गर्म करने के लिए मोटी तली वाले तथा कलई किये हुए पीतल के बर्तन सबसे अच्छे होते हैं। मोटी तली वाला एल्यूमीनियम का बर्तन भी प्रयोग में लाया जा सकता है। आजकल गृहणियां स्टील के बर्तनों का रसोई घर में अधिक इस्तेमाल करती हैं। स्टील के बर्तन दूध गर्म करने के लिए अच्छे नहीं होते।

दूध लेने से पहले दूध वाला बर्तन साफ होना चाहिए। बर्तन में थोड़ा सा पानी लेकर ढक्कन बंद करके उस समय तक उबालिये जब तक भाप बाहर न निकलने लगे या फिर बर्तन को गर्म पानी ($80-90^0$ सेण्टीग्रेड) से निर्जीवीकृत कर सकते हैं।

दूध लेने के पश्चात् दूध को साफ छलनी या मलमल के कपड़े से छान कर साफ बर्तन में रखें। इस दूध को धुआं रहित आग पर उबालने के बाद तुरंत ठंडा कर लें। एक बड़े बर्तन में पानी भरकर दूध वाले बर्तन को उसमें रखकर ठंडा करें। दूध खुला रखने से उसमें धूल, मच्छर तथा मक्खी आदि गिर सकते हैं इसलिए दूध के बर्तन को हमेशा ढ़ककर रखना चाहिए।

डेयरी में जीवाणुरहित बोतलों में दूध भरा जाता है। निर्जीवीकृत बोतलें ही दूध रखने के लिए उपयुक्त होती हैं। निर्जीवीकृत बोतलों का दूध वैसे ही पीया जा सकता है। यदि रेफ्रीजरेटर न हो तो बोतल किसी ठण्डे स्थान पर और रसोई से दूर रखनी चाहिए। बोतल पर मलमल का टुकड़ा लगाकर रखें जिसके किनारे पानी में डूबे हुए हों। बोतल से दूध उस समय दूसरे बर्तन में निकालें जब उसे इस्तेमाल करना हो। रेफ्रीजरेटर के अभाव में दूध को ठण्डा करने के लिए दूध के बर्तन के चारों तरफ मलमल का कपड़ा लपेट कर उसे पानी से भरे हुए मिट्टी के पात्र में रखें। दूध को सुरक्षित रखने के लिए 6 से 8 घण्टे बाद उबालना जरूरी है। दूध को कूलर के सामने रखने से भी इसको अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

दूध के बर्तन को तुरन्त साफ कर लेना चाहिए। बर्तन को डिटरजेंट या सोडे अथवा बारीक राख के मिश्रण से रगड़ कर अच्छी तरह से अन्दर और बाहर से साफ करके पानी से धोना चाहिए। आखिर में बर्तन को गर्म पानी ($80-90^0$ सेण्टीग्रेड) से धोने के बाद उसे तब तक साफ और सूखी जगह पर उल्टा करके रखें जब तक उसमें दूध फिर से न लेना हो।

11. दूध को अधिक गरम करने पर पौष्टिकता पर प्रभाव

दूध की पौष्टिकता इस पर निर्भर करती है कि इसे किस तापमान पर कितने समय तक गर्म किया जाता है। कुछ विटामिन दूध को गर्म करने पर नष्ट हो जाते हैं। दूध को पास्चुरीकृत करने पर 20-30 प्रतिशत विटामिन-सी नष्ट हो जाता है। जबकि अन्य विटामिनों पर पास्चुरीकरण क्रिया का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। दूध को देर तक उबालते रहने पर काफी विटामिन नष्ट हो जाते हैं जैसे थाईमिन 30 से 40 प्रतिशत, विटामिन-बी$_6$ 50 से 60 प्रतिशत और विटामिन-बी$_{12}$ 80 से 90 प्रतिशत। इसलिए गृहणियों को चाहिए कि जब तक आवश्यकता न हो दूध को ज्यादा देर तक नहीं उबालें।

स्वच्छ व स्वस्थ दूध के लिए क्या करें

- रोग रहित व स्वस्थ पशु को पालें।
- दूध निकालने वाला स्वस्थ, निपुण व अच्छी आदतों वाला हो।
- साफ व आरामदायक पशुशाला।
- प्रतिदिन खुर्रे के साथ पशु की सफाई।
- पशुशाला के आसपास की सफाई।
- मक्खी-मच्छर रहित पशुशाला।
- अपने आप बन्द होने वाले दरवाजे।
- हवादार दूधशाला।
- छोटे मुंह व ऊपर से ढ़के हुए दूध के बर्तन।
- समय पर दूध निकालना।
- कमजोर पशु से पहले स्वस्थ पशु का दूध निकालें।
- रोगग्रस्त पशु का दूध सबसे बाद में व अलग निकालें।
- दूध निकालने से पहले व बाद में कीटाणु रोधी दवाई के घोल में थनों को डुबोयें।
- शुष्क हाथों से दूध निकालें।
- अंगूठा बाहर करके पूरे हाथ से दूध निकालें।
- आरामदायक तरीके से पूरा दूध निकालें।
- दूध को निकालने के बाद छानें।
- दूध का भण्डारण 10^{0} सेंटीग्रेड से नीचे करें।
- दूध निकालने के तुरन्त बाद दूधशाला की सफाई करें।
- थनैला रोग से बचाव के तरीके अपनायें।
- दूध की पहली कुछ बूंदों को अलग बर्तन में निकालें लेकिन फर्श पर न डालें।

क्या न करें

- दूध निकालने वाला व्यक्ति बार-बार न बदलें।
- दूध निकालते समय धूल भरा चारा न दें।
- दूध निकालते समय दुर्गन्धयुक्त चारा न दें।
- खुले मुंह के बर्तन का प्रयोग न करें।
- दूध निकालते समय पशु को न डरायें।
- पानी या दूध से हाथ को गीला न करें।
- अंगूठा अन्दर दबाकर दूध न निकालें।
- बीमार व स्वस्थ पशु का दूध इकट्ठा न निकालें।
- थनों को नीचे की ओर न खींचें।
- लम्बे समय तक दूध को खुला न रखें ।
- पशुशाला के आसपास कुत्ते, बिल्ली या अन्य जंगली जानवरों को न आने दें।

दूध एवं दूध-उत्पाद

भारत में अधिकतर लोग शाकाहारी होने के कारण दूध और इससे बने पदार्थ उनके भोजन में प्रोटीन की कमी को दूर करने का एकमात्र साधन हैं। देश में दूध को प्राचीन काल से ही एक उत्तम आहार माना जाता रहा है तथा मानव पोषण में दूध की भूमिका अग्रणीय रही है। हमारे प्राचीन ग्रंथों में गौ-रस का विवरण बार-बार आता रहता है। देश में प्रति व्यक्ति दूध की औसत उपलब्धता 237 ग्राम (2003-04) है। भारत में कुल दूध उत्पादन का 44 प्रतिशत गाय से तथा 55 प्रतिशत भैंसों से प्राप्त किया जाता है। दूध के मुख्य घटक सभी स्तनपायी जानवरों में विद्यमान होते हैं। केवल उनके अनुपात में भिन्नता पाई जाती है। यह मुख्य घटक हैं दूध वसा, प्रोटीन, दूध शर्करा एवं खनिज लवण।

दूध वसा

यह दूध का सबसे महत्वपूर्ण अवयव है जो कि नस्ल, पशु आहार तथा दूध देने की अवस्था से प्रभावित होता रहता है। भैंस के दूध में वसा की मात्रा 6 से 8 प्रतिशत होती है। दूध को विशिष्ट स्वाद, सुगंध एवं चिकनाई वसा से ही प्राप्त होती है तथा इसका मानव स्वास्थ्य पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। क्योंकि मानव शरीर के लिए आवश्यक फैटी एसिड्स की पूर्ति दूधवसा द्वारा ही होती है तथा यह मानव-पोषण में ऊर्जा का श्रेष्ठ स्रोत है। देश में घी उद्योग एवं आईसक्रीम उद्योग दूध वसा पर ही निर्भर करता है।

प्रोटीन

दूध में प्रोटीन अथवा नाइट्रोजनिक पदार्थों की मात्रा औसतन 4 प्रतिशत पाई जाती है। मानव-पोषण में एमीनो एसिड की पूर्ति का यह सर्वोत्तम स्रोत है। गाय के दूध के प्रोटीन में भैंस के दूध के प्रोटीन के मुकाबले ल्यूसीन तथा वेलाईन अमीनो एसिड्स की बहुलता पाई जाती है परन्तु आर्गेनिक लाईसीन, हिस्टीडीन तथा मिथायोनीन अमीनो एसिड्स की मात्रा कम पाई जाती है। दूध के दो मुख्य घटक कैसीन तथा सीरम प्रोटीन होते हैं। सीरम प्रोटीन में एल्ब्यूमिन तथा ग्लोब्यूलीन मुख्य होते हैं। दूध में बहुत ही सीमित मात्रा में प्रोटेनितर पदार्थ पाए जाते हैं जिनमें यूरिया भी विद्यमान होता है। इसके अलावा थोड़ी बहुत मात्रा में क्रियेटनीन, यूरिक अम्ल, अमोनिया तथा ऐसे पानी में घुलने वाले विटामिन जिनमें हाइड्रोजन होती है, पाये जाते हैं। दूध में कुछ मात्रा में एन्जाईम्स भी पाए जाते हैं। इनमें से दो प्रमुख एन्जाईम्स ऑक्सीडेस तथा एल्कलाईन फास्फेट हैं।

दूध शर्करा (लैक्टोस)

दूध शर्करा का दूध की मिठास एवं ऊर्जा में विशेष योगदान होता है। वसा और प्रोटीन के बाद यह दूध का तीसरा सबसे महत्वपूर्ण घटक है। दूध की किण्वण प्रक्रिया में सूक्ष्म जीवाणु लैक्टोस को लैक्टिक एसिड में बदलकर दूध में अम्लता पैदा करते हैं। जिससे दूध के विभिन्न व्यंजन जैसे दही, योघर्ट तथा चीज बनते हैं। शिशु पोषण के लिए बनने वाले दूध व्यंजनों में दुग्ध शर्करा की विशेष भूमिका होती है। बच्चों के मस्तिष्क विकास में दूध शर्करा विशेष लाभदायक होता है।

तालिका 1. दूध के घटकों की संरचना विभिन्न श्रेणियों के अंतर्गत निम्नलिखित है :-

	पानी	वसा	प्रोटीन	शर्करा	खनिज लवण	कु.ठो. पदार्थ	व.र.कु.ठो. पदार्थ
भैंस	82.10	8.0	4.2	4.9	0.8	17.9	9.9
गाय (विदेशी)	87.60	3.7	3.2	4.1	0.7	12.4	8.7
गाय (देशी)	86.40	4.7	3.3	4.9	0.7	13.6	8.7
बकरी	88.20	4.0	3.4	3.6	0.8	11.8	7.8
भेड़	79.50	8.5	3.2	4.1	0.9	12.4	8.7
ऊंट	87.00	2.9	3.9	5.4	0.7	13.0	10.5
मानव	88.53	3.2	1.2	6.7	0.2	11.7	8.5

(कु.ठो. - कुल ठोस), (व.र.कु.ठो. - वसा रहित कुल ठोस)

खनिज लवण

दूध में लगभग 0.7 से 0.8 प्रतिशत खनिज लवण होते हैं। दूध में पाए जाने वाले सभी खनिज लवण पोषण की दृष्टि से आवश्यक हैं तथा इसमें कैल्शियम एवं फास्फोरस अच्छी मात्रा में पाए जाते हैं। दूध में कैल्शियम का अपना महत्व है। यह नौजवान, शिशु की हड्डियों के विकास के लिए आवश्यक है तथा नवजात शिशु के पेट में होने वाली दूध की थक्का बनने की प्रक्रिया में भी महत्वपूर्ण है। दूध को एन्जाईम (रैनिन) की उपस्थिति में जमाने में भी कैल्शियम का योगदान होता है। गाय के दूध में औसतन 0.01 से 0.05 प्रतिशत कैल्शियम पाया जाता है। फास्फोरस भी कैल्शियम की तरह हड्डियों तथा दांतों की रचना में आवश्यक है तथा प्रत्येक कोशिका की कार्य प्रणाली में भी महत्वपूर्ण है। यह दूध में स्वतंत्र तथा अस्वतंत्र जुड़ी हुई दशा में पाया जाता है। भैंस के दूध में कुल फास्फोरस की मात्रा 0.12 से 0.13 तक है जबकि देसी गाय में यह मात्रा 0.10 से 0.12 प्रतिशत होती है। कैल्शियम और फास्फोरस के अलावा अन्य महत्वपूर्ण खनिज लवण सोडियम, पोटाशियम, क्लोराईड, आयरन, कॉपर, जिंक, एल्यूमीनियम, मैंगनीज़, मोलीबिडैनम तथा सिलिकोन हैं।

विटामिन्स

विटामिन्स प्राणाधार माने जाते हैं। सामान्य वृद्धि, अच्छे स्वास्थ्य एवं प्रजनन के लिए विटामिन्स अति आवश्यक हैं। दूध में दो प्रकार के विटामिन पाए जाते हैं, पानी में घुलनशील और वसा में घुलनशील। गाय के दूध का हल्का पीलापन दूध में विटामिन 'ए' के कैरोटीन की शक्ल में होने के कारण होता है जोकि दूध के पीलेपन के लिए उत्तरदायी है। जबकि भैंस के दूध में विटामिन-ए कैरोटीन से पूर्ण रूप में विटामिन-ए में परिवर्तित हो जाता है जो रंगहीन होता है। भैंस के दूध में विटामिन-ए की मात्रा 0.69 मि.ग्राम प्रति लीटर होती है जबकि गाय में यह मात्रा 0.48 मि.ग्राम प्रति लीटर होती है। भैंस के दूध में 19.5 से 39.5 मि.ग्राम प्रति लीटर तक विटामिन-सी उपलब्ध होता है जबकि गाय के दूध में यह मात्रा 7.8 से 7.9 मि.ग्राम प्रति लीटर होती है। इस प्रकार दूध विटामिन 'ए', विटामिन 'डी', थाईमीन एवं राईबोफ्लेविन का अच्छा स्रोत है। परन्तु विटामिन-सी की मात्रा हमारी आवश्यकता अनुसार कम होती है।

दूध के लिए भिन्न-भिन्न प्रदेशों में 'प्रवेन्शन ऑफ फूड अडल्ट्रेशन एक्ट 1955' के अंतर्गत न्यूनतम वसा की मात्रा के आधार पर कुछ मानक निर्धारित किए गये थे जिनको जनवरी 1991 में पुनः संशोधित किया गया। इन संशोधनों के आधार पर विभिन्न राज्यों में निर्धारित मानक इस प्रकार हैं :-

राज्य	न्यूनतम वसा की मात्रा (प्रतिशत)	
	भैंस	गाय
आन्ध्र प्रदेश	5.0	3.5
अरूणाचल प्रदेश	5.0	3.5
असम	6.0	3.5
बिहार	6.0	3.5
गोवा	5.0	3.5
गुजरात	6.0	3.5
हरियाणा	6.0	4.0
हिमाचल प्रदेश	5.0	3.5
जम्मू और कश्मीर	5.0	3.5
कर्नाटक	5.0	3.5
केरल	5.0	3.5
मध्य प्रदेश	5.0	3.5
महाराष्ट्र	6.0	3.5
मणिपुर	5.0	3.5
मेघालय	6.0	3.5
मिजोरम	5.0	3.5
नागालैंड	5.0	3.5
उड़ीसा	5.0	3.0
पंजाब	6.0	4.0
राजस्थान	5.0	3.5
सिक्किम	6.0	3.5
तमिलनाडू	5.0	3.5
त्रिपुरा	5.0	3.5
उत्तर प्रदेश	6.0	3.5
बंगाल	6.0	3.5
अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह	5.0	3.5
चण्डीगढ़	6.0	4.0
दादरा तथा नगर हवेली	5.0	3.5
दमन तथा दीव	5.0	3.5
देहली	6.0	3.5
लक्षद्वीप	5.0	3.5
पाण्डीचेरी	5.0	3.5

वसा के अतिरिक्त वसा रहित शुष्क पदार्थों की न्यूनतम मात्रा भैंस के दूध में 9.0 प्रतिशत तथा गाय के दूध में 8.5 प्रतिशत होनी चाहिए।

दुग्ध की जांच

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन के बाद दूध में की गई विभिन्न प्रकार की मिलावटों का पता लगाना भी उपभोक्ताओं के लिए अति आवश्यक है। भारत में दूध उद्योग को तीन मुख्य भागों में बांटा जा सकता है : उत्पादक, वितरक एवं उपभोक्ता।

दूध का मुख्य उत्पादन दूर-दराज के ग्रामीण इलाकों में अधिक होता है तथा दूध की मांग तथा खपत शहरी क्षेत्रों में अधिक होती है। इसलिए गांव से शहर तक दूध पहुंचाने के लिए वितरक, जिन्हें आमतौर पर 'दूधिये' कहा जाता है, की भूमिका भी अहम् होती है। दूध निकालने से लेकर दूध वितरित करने में तीन चार घंटे लग जाते हैं तथा इस दौरान दूध के संक्रमित अथवा खराब होने की सम्भावना सबसे अधिक होती है। यह समस्या भैंस के दूध के मामले में ज्यादा गंभीर रूप ले लेती है जब उसमें पानी मिलाकर गाय के दूध की तरह बेचा जाता है, क्योंकि कानूनन भैंस के दूध में वसा की न्यूनतम मात्रा 6 प्रतिशत तथा गाय के दूध में 4 प्रतिशत होनी चाहिए। ऐसे लोग दूध में मिलाए जाने वाले पानी की स्वच्छता का भी कोई ध्यान नहीं रखते तथा तालाबो, नहरों और नलकूपों से अथवा किसी भी स्रोत से अशुद्ध पानी जो पीने के लिए भी उपयुक्त नहीं होता तथा दूध में हानिकारक जीवाणुओं की भारी वृद्धि का स्रोत बन जाता है, दूध में मिलाकर शहरों में बेच देते हैं। अतः इन सब समस्याओं पर काबू पाने के लिए विभिन्न विधियों द्वारा दूध की जांच अति आवश्यक है।

दूध की गुणवत्ता के लिए की जाने वाली जांच की विधियाँ

1. लैक्टोमीटर

लैक्टोमीटर कांच का एक साधारण सा उपकरण है। यह दूध की स्पेसिफिक् ग्रेविटी (आपेक्षित घनत्व) की जांच करता है। लैक्टोमीटर जार को 3/4 भाग दूध से भरकर इसमें लैक्टोमीटर नम्बर पढ़ना चाहिए। इसकी रीडिंग पर दूध के तापक्रम का भी प्रभाव रहता है। अतः इसके स्टेण्डर्ड तापक्रम जो (60^0 फा.) से अधिक तापक्रम के लिए लैक्टोमीटर नम्बर में एक जोड़ देना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि सैम्पल का लैक्टोमीटर नम्बर 22 है और दूध का तापक्रम जो आमतौर पर वायुमंडल के तापक्रम के बराबर ही रहता है, यदि 85^0 फा. है तो $85-60^0 = 25^0$ फा. का तापक्रम में अन्तर होने पर 2.5 लैक्टोमीटर नम्बर 22 में जोड़ा जाना चाहिए और इस प्रकार दूध के सैम्पल की सही लैक्टोमीटर रीडिंग 22 + 2.5 = 24.5 हुई। गाय के दूध की सही लैक्टोमीटर रीड़िंग 28 से 30 तक और भैंस के दूध की 30 से 32 तक होती है। उपर्युक्त सैम्पल यदि भैंस के दूध का हो तो उसमें (31-24.5)/31 x 100 = लगभग 21 प्रतिशत पानी की मात्रा मिली हुई है।

यदि दूध में सपरेटा मिला हुआ है तो यह टैस्ट इसकी मात्रा नहीं बता पाएगा, क्योंकि सपरेटा का आपेक्षिक घनत्व सामान्य दूध के लगभग बराबर या थोड़ा सा अधिक होता है। अतः सपरेटा की मिलावट के लिए फैट टैस्ट भी करना चाहिए। क्योंकि सपरेटा डालने से फैट की मात्रा कम हो जाएगी। पानी मिले हुए दूध में अरारोट, स्टार्च, चीनी, यूरिया, अमोनियम सल्फेट आदि डालकर इसके घनत्व (भारीपन) में आवश्यक वृद्धि करने की कोशिश की जाती है। इसलिए इसकी अलग से जांच की जानी चाहिए।

2. वसा की जांच

दूध में वसा की जांच न केवल दूध की शुद्धता परखने के लिए जरूरी है अपितु आजकल ग्रामीण अंचलों से सहकारी समितियों द्वारा दुग्ध संस्थानों हेतु खरीदे गये दूध की कीमत निर्धारण करने के लिए सर्वोत्तम उपाय भी है। दूध की कीमत दूध में उपस्थित वसा के आधार पर निर्धारित की जाती है। यदि वसा के साथ-साथ वसा रहित ठोस पदार्थ को भी आधार मानकर कीमत निर्धारण की जाए तो मिलावट की संभावना कम हो जाती है तथा दूध उत्पादक को दूध की सही-सही कीमत भी मिल जाती है।

आमतौर पर दूध में वसा को मापने के लिए 'गरबर फैट टैस्ट' विधि उपयोग में लाई जाती है। इस विधि में गरबर ब्युटाइरोमीटर ट्यूब में 10 मि.ली. सल्फ्यूरिक एसिड, 1 मि. ली. आइसोअमाईल अल्कोहल तथा 10.75 मि.ली. दूध लेकर, रबड़ स्टॉपर से बंद करके अच्छी तरह मिलाया जाता है और फिर 4-5 मिनट के लिए सैन्ट्रफ्यूज करके रोशनी के सामने ट्यूब के स्केल में वसा की मात्रा पढ़ी जाती है। कानूनन गाय

के दूध में 4 प्रतिशत एवं भैंस के दूध में 6 प्रतिशत वसा अवश्य होनी चाहिए।

3. स्टार्च की जांच

दूध में पानी की मिलावट को छिपाने के लिए स्टार्च (अरारोट) डाल दिया जाता है। इसकी जांच के लिए टैस्ट ट्यूब में 3-4 मि.ली. दूध का सैम्पल डालकर मोमबत्ती की मदद से उसे उबालें और पानी में ठंडा करें और फिर एक प्रतिशत आयोडीन के घोल की कुछ बूंदें डालें। दूध में स्टार्च होने पर गहरा नीला रंग आ जाएगा।

4. परिरक्षणों (प्रिजर्वेटिव) की जांच

गर्मी व बरसात के मौसम में दूध को खराब होने से बचाने के लिए अवैध रूप से हाइड्रोजन पराआक्साईड या फार्मेलीन आदि डाल दिए जाते हैं जिनकी अधिक मात्रा स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकती है। हाइड्रोजन पराआक्साईड की जांच के लिए टैस्ट ट्यूब में लगभग 5 मि.ली. दूध का सैम्पल डाल कर 5 बूंद पैराफिनाइलीन डाइएमाइन (2 प्रतिशत) डालने पर यदि नीला रंग आ जाता है तो दूध में हाइड्रोजन पराआक्साईड की मिलावट सिद्ध होती है।

5. दूध की खटास की जांच

दूध में कीटाणुओं की वजह से खटास पैदा होती है जोकि दूध शर्करा को लैक्टिक एसिड में बदल देते हैं। यदि दूध में ज्यादा खटास पैदा होने की आशंका हो तो एक टैस्ट ट्यूब में 4-5 मि.ली. दूध लेकर उबलते पानी में रखें या फिर मोमबत्ती की लौ पर उबालें। यदि टैस्ट ट्यूब में सैम्पल का दूध फट जाए तो सारा का सारा दूध उबालने लायक नहीं है। ऐसे दूध को थोड़ा-सा खाने वाला सोडा मिलाकर कुछ समय के लिए बचाया जा सकता है। दूध की खटास की जांच के लिए पी. एच. स्ट्रिप्स का प्रयोग भी किया जा सकता है। स्ट्रिप के कवर पर दिये हुए रंगों से मिलान करने पर खटास का अंदाजा आसानी से लगाया जा सकता है।

6. थनैला रोग से ग्रसित दूध की जांच

यह रोग जीवाणुओं द्वारा होता हैं और रोगी पशु के दूध में अनेक प्रकार के बदलाव आ जाते हैं जिससे दूध कम उपयोगी हो जाता है। करनाल में किये गए एक अध्ययन में पाया गया कि जिन भैंसों के थन बाहर से बिल्कुल ठीक दिखाई देते हैं उनमें भी 35.7 प्रतिशत भैंसे इस जीवाणु से ग्रसित थीं। इस रोग का प्रसार मुख्यत: दूध निकालने के समय होता है। पशु में यह रोग होने पर दूध में लैक्टोस की मात्रा में कमी आ जाती है, यद्यपि प्रोटीन में कोई कमी नहीं आती, परन्तु वसा रहित शुष्क पदार्थों की मात्रा कम हो जाती है। ऐसे दूध की दही जमाने में भी कठिनाई होती है तथा इस दही का स्वाद भी ठीक नहीं होता। इस रोग की जांच के लिए मैस्टाईटिस स्ट्रिप का प्रयोग किया जाता है। जिससे पशु में इस रोग के होने का पता लगता है।

दूध-उत्पाद

अ) देसी दूध-उत्पाद

देश में कुल दूध-उत्पादन का आधे से अधिक भाग देसी दुग्ध पदार्थों के लिए उपयोग होता है। साधारणत: यह पदार्थ हलवाइयों द्वारा छोटे पैमाने पर तैयार किये जाते हैं। ये पदार्थ परम्परागत देसी विधियों द्वारा ही बनाए जाते हैं। देश में त्यौहारों एवं शादियों के अवसर पर इन प्रचलित देसी दुग्ध पदार्थों की शहरी, अर्ध-शहरी तथा ग्रामीण जनता में काफी मांग होती है। ये पदार्थ मुख्यत: निम्नलिखित हैं :

1. पनीर

पनीर हमारे देश का एक प्रमुख दूध उत्पाद है। भैंस के दूध या स्टैंडर्ड दूध जिसमें 5.5 प्रतिशत वसा हो, उसे धीमी आंच पर गरम करके 70 डिग्री सैंटीग्रेड पर पांच मिनट तक उसका तापमान लाकर उसमें एक प्रतिशत साईट्रिक एसिड मिलाकर दूध को फाड़ लिया जाता है। उसमें से हल्के हरे रंग वाले तरल पदार्थ (जिसको व्हे कहा जाता है) को मलमल के कपड़े में से छानकर अलग कर लिया जाता है तथा सफेद ठोस पदार्थ को जिसमें दूध, वसा और प्रोटीन मुख्य रूप से होते हैं, चक्के की शक्ल में प्राप्त किया जाता है जिसको तुरन्त 4 डिग्री तापमान के पानी में डालने पर उसकी संरचना में मजबूती आ जाती है। दूध की शर्करा और पानी में घुलनशील दूसरे विटामिन और प्रोटीन व्हे के साथ बाहर चले जाते है। भैंस का दूध जिसमें 4.7 प्रतिशत वसा और 14.5 प्रतिशत कुल ठोस पदार्थ हों तो हमें 71 प्रतिशत आर्द्रता वाला पनीर प्राप्त होता है। कानूनन पनीर में 70-71 प्रतिशत से अधिक आर्द्रता नहीं होनी चाहिए। पनीर उत्पादन में मुख्य रूप से तीन समस्याएं हैं। एक तो इसके उत्पादन के लिए उन्नतशील तकनीक का अभाव,

दूसरा इसका जल्दी खराब हो जाना और तीसरा इसका मंहगा होना। फिर भी यह देश का एक लोकप्रिय दूध उत्पाद है। आजकल देश में कम वसा वाला पनीर, सम्पूरित पनीर तथा गाय के दूध से पनीर बनाने की विधियां विकसित की जा चुकी हैं तथा पनीर परिरक्षण में निर्वात पैकिंग के साथ-साथ ब्राईन और हाईड्रोजन परोक्साईड के प्रयोग द्वारा इसे एक महीने से भी ज्यादा समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

2. खोया

खोया हमारे देश का सबसे अधिक प्रचलित दूध पदार्थ है। खोए से ही विभिन्न प्रकार की स्वादिष्ट मिठाइयाँ जैसे बर्फी, कलाकंद, गुलाब जामुन आदि बनाए जाते हैं। दीवाली के अवसर पर खोए का व्यापार अपनी चरम अवस्था पर होता है। देश का कुल खोया उत्पादन जो लगभग 350 मिलियन किलोग्राम है, का 36 प्रतिशत केवल उत्तर प्रदेश से आता है। तीन प्रकार का खोया थाप, पिण्डी एवं दानेदार मुख्य रूप से उत्पादित किया जाता है। कानूनी मानक के अनुसार खोया में कम से कम 20 प्रतिशत दूध वसा का होना आवश्यक है। भैंस के दूध से कुल वजन का 21 से 23 प्रतिशत खोया (28 प्रतिशत आर्द्रता वाला) प्राप्त किया जा सकता है। खोया उद्योग में भी मुख्य रूप से दो समस्याएं हैं, एक तो इसको व्यापक पैमाने पर बनाने के लिए समुचित तकनीक की कमी और दूसरे इसके शीघ्र खराब होने की प्रवृत्ति। राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड ने एक ऐसे संयत्र का विकास किया है जिसमें लगभग 40 किलोग्राम खोया प्रति घंटा संघनित दूध से बनाया जा सकता है और अब ऐसा खोया पाऊडर भी बनाया गया है जो लगभग 6 से 9 सप्ताह तक सामान्य तापमान पर सुरक्षित रहता है। जबकि खोया कम तापमान पर भी केवल एक सप्ताह तक रखा जा सकता है।

3. छैना

छैना भी एक महत्वपूर्ण दूध पदार्थ है तथा इसको बनाने की विधि पनीर की भांति है। परन्तु मुख्य रूप से यह गाय के दूध से ही बनाया जाता है। इसकी नरम संरचना के कारण बंगाली मिठाइयां जैसे रसगुल्ला, संदेश आदि इसी से बनाए जाते हैं। इसकी संरचना को नरम एवं दानेदार रखने के लिए पनीर की भांति इसके चक्के को वजन द्वारा दबाया नहीं जाता। आजकल ऐसी तकनीक का विकास करने के प्रयास किये जा रहे हैं जिससे भैंस के दूध से भी छैना प्राप्त किया जा सके। पनीर की भांति छैना में भी 70 प्रतिशत से ज्यादा आर्द्रता नहीं होनी चाहिए और कुल ठोस पदार्थों की मात्रा का कम से कम आधा भाग दूध वसा होनी चाहिए। गाय के दूध से 16 से 18 प्रतिशत दूध के वजन के बराबर 49 से 54 प्रतिशत आर्द्रता वाला छैना प्राप्त किया जा सकता है।

4. मक्खन

मक्खन बनाने की परम्परागत विधि में दूध को जमाकर दही बनाने के बाद उसे बिलोकर मक्खन व छाछ को अलग-अलग कर लिया जाता है। परन्तु आजकल डेयरी प्लांटों में मुख्य रूप से क्रीम को कल्चर द्वारा राईपन करके प्राप्त किया जाता है। जिसमें वसा की मात्रा कम से कम 80 प्रतिशत तथा नमी 16 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। मक्खन का मुख्य उपयोग उसको गर्म करके घी बनाने में किया जाता है। परन्तु आजकल 'टेबल बटर' जो देसी मक्खन का ही एक सुधरा रूप है, काफी लोकप्रिय हो चुका है।

5. क्रीम

दूध से क्रीम निकालने वाली मशीन जिसे क्रीम सैपरेटर कहा जाता है आसानी से उपलब्ध है। यह हाथ से चलाने वाली छोटे साईज से लेकर बिजली से चलने वाली मध्यम आकार की तथा बड़े संयत्रों में प्रयुक्त होने वाली जो अपनी सफाई खुद करने में सक्षम होती हैं, उपलब्ध हैं। इस मशीन के प्रयोग से हम दूध से क्रीम तथा सपरेटा दूध इच्छानुसार अलग-अलग कर सकते हैं। दूध की बहुलता के समय दूध से निकाली हुई क्रीम से घी बना लिया जाता है तथा सपरेटा दूध को स्प्रे ड्राई तकनीक से सुखाकर सूखा दूध पाऊडर बना लिया जाता है जो दूध में वसा रहित ठोस पदार्थों की कमी की पूर्ति करने के काम आता है। क्रीम में वसा की मात्रा 20 प्रतिशत होनी चाहिए। ज्यादा गाढ़ी क्रीम जिसमें वसा की मात्रा 80 प्रतिशत तक होती है प्लास्टिक क्रीम के नाम से जानी जाती है।

6. घी

हमारे देश में दूध को जल्दी खराब होने से बचाने के लिए प्राचीन काल से ही घी का निर्माण किया जाता है। ग्रामीण जनता के भोजन का यह लोकप्रिय एवं पौष्टिक पदार्थ है। घी बनाने के देसी तरीके में पहले दूध को जमाकर दही तैयार की

जाती है तथा उसे बिलोकर छाछ व मक्खन को अलग कर लिया जाता है तथा मक्खन को हल्की आंच पर गर्म करके शुद्ध घी प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु अब ऐसे संयत्र बनाए गये हैं जिनमें घी का बनाना बहुत आसान हो गया है तथा इसके बनाने में ऊर्जा एवं समय की बचत होती है। इससे लगभग 500 कि.ग्राम घी प्रति घंटा बनाया जा सकता है। यह घी मुख्य रूप से क्रीम से ही प्राप्त किया जाता है। यदि क्रीम में जामन डालकर परिपक्वन करके उससे घी बनाया जाए तो उसकी सुगंध एवं स्वाद गांव में देसी विधि से बनाये गये घी जैसा ही हो जाता है। साधारणत: घी सामान्य तापक्रम पर चार से छह महीने तक सुरक्षित रखा जा सकता है। शुद्ध घी में कानूनन 99.5 प्रतिशत दूध वसा और 0.5 प्रतिशत से ज्यादा आर्द्रता नहीं होनी चाहिए।

7. लस्सी

लस्सी छाछ एवं मट्ठे के नाम से भी लोकप्रिय है। वैसे तो यह मक्खन बनाने के बाद बचा हुआ उत्पाद है परन्तु एक अनुमान के अनुसार प्रत्येक एक किलो घी को तैयार करने में पचास से साठ किलोग्राम लस्सी प्राप्त होती है। यदि देश में कुल घी उत्पादन का 90 प्रतिशत देसी विधि से तैयार किया जाता है तो सालाना करीब 27500 मिलियन किलोग्राम लस्सी देश में उपलब्ध होती है। लस्सी में पर्याप्त मात्रा में दूध प्रोटीन और ठोस फोस्फोलिपिडस उपलब्ध हैं जो मानव पोषण में महत्वपूर्ण हैं। इसके साथ ही ग्रीष्म ऋतु में यह एक लोकप्रिय शीतल पेय के रूप में भारत के जन-जीवन का अभिन्न हिस्सा है। यदि घर में लस्सी का उत्पादन आवश्यकता से अधिक हो तो गृहणियों को चाहिए कि इसे दूसरे व्यंजनों जैसे रायता, कढ़ी आदि बनाने में प्रयुक्त करें। जब गाजर प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो तो 40 प्रतिशत गाजर के रस और 60 प्रतिशत लस्सी को मिलाकर एक स्वादिष्ट पेय, जिसमें विटामिन 'ए' की प्रचुर मात्रा होती है, प्राप्त किया जा सकता है जो पौष्टिकता और स्वाद की दृष्टि से एक उत्तम पेय है। भैंस के दूध के 75 से 80 प्रतिशत भाग में 20 से 25 प्रतिशत भाग लस्सी का मिलाकर पनीर भी बनाया जा सकता है जोकि स्वाद की दृष्टि से परम्परागत पनीर से बढ़िया पाया गया है। लस्सी की औसतन संरचना निम्न प्रकार से है :

पानी	96.2
कुल ठोस पदार्थ	3.8
वसा ठोस पदार्थ	0.8
वसा रहित ठोस पदार्थ	3.0
प्रोटीन	1.3
दूध शर्करा	1.2
भस्म	0.4
लैक्टिक अम्ल	0.44

ब) आधुनिक दूध-उत्पाद

डेयरी प्रौद्योगिकी के विकास के साथ देश में देसी दूध उत्पादों के साथ-साथ जो आधुनिक उत्पाद लोकप्रिय हो रहे हैं उनमें संघनित एवं शुष्क दूध पदार्थ, आईसक्रीम, शिशु आहार, चीज़ व दूसरे किण्वित पदार्थ शामिल हैं।

1. संघनित एवं शुष्क दुग्ध-उत्पाद

संघनित दूध मुख्य रूप से वाष्पीकृत दूध और मीठा किया गया संघनित दूध के रूप में उपलब्ध है। वाष्पीकृत दूध में पानी आंशिक रूप से वाष्पित करके हटाया जाता है और इसमें कम से कम आठ प्रतिशत दूध वसा और 26 प्रतिशत कुल ठोस पदार्थ होने चाहिएं। इसमें कैल्शियम क्लोराईड, साईट्रिक एसिड और सोडियम साईट्रेट यदि मिले भी हुए हों तो इनकी कुल मात्रा आखिरी उत्पाद में 0.3 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होनी चाहिए।

मीठे किये गए संघनित दूध में कम से कम 9 प्रतिशत दूध वसा और 31.0 प्रतिशत कुल दूध ठोस पदार्थ होने चाहिएं तथा 40 प्रतिशत गन्ने की शक्कर की मात्रा होनी चाहिए। चूंकि हमारा आधुनिक डेयरी उद्योग मुख्य रूप से सपरेटा दूध पाऊडर, घी तथा तरल दूध के ऊपर निर्भर करता है और देश में दूध का उत्पादन भी मौसम के अनुसार होता है। अत: शीत ऋतु में दूध की बहुतायत के समय हमारे डेयरी संयंत्र दूध को घी बनाने तथा सपरेटा दूध पाऊडर के उत्पादन में लग जाते हैं। यही सपरेटा दूध पाऊडर ग्रीष्म ऋतु में दूध की कमी के दौरान मानकीकृत दूध, टोन्ड एवं डबल टोन्ड दूध तथा आईसक्रीम बनाने में प्रयुक्त होता है। शुष्क दूध पाऊडर की मुख्य रूप से दो विधियां प्रचलित हैं - रोलर ड्राई शुष्क दूध एवं स्प्रे ड्राई शुष्क दूध।

रोलर ड्राई शुष्क दूध जहां बनाने में थोड़ा सस्ता पड़ता है, वहीं इसका उपयोग भी सीमित है। परन्तु यह गुलाब जामुन इत्यादि बनाने के लिए उपयुक्त है।

देश का अधिकांश शुष्क दूध तथा सपरेटा शुष्क दूध स्प्रे ड्राई विधि द्वारा ही तैयार किया जाता है क्योंकि यह ज्यादा घुलनशील होता है तथा इसमें दूध के जलने एवं उसके स्वाद बदलने की संभावना भी कम होती है। कानूनन दूध पाऊडर जो सम्पूर्ण दूध से तैयार किया जाता है, में 96 प्रतिशत कुल दूध ठोस पदार्थ जिसमें 36 प्रतिशत दूध वसा भी होनी चाहिए तथा आर्द्रता की अधिकतम मात्रा 4 प्रतिशत होती है, वहीं सपरेटा दूध पाऊडर में कुल दूध ठोस पदार्थों की मात्रा 95 प्रतिशत तथा आर्द्रता की मात्रा 1.5 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

2. आईसक्रीम

पाश्चात्य देशों की भांति हमारे देश में भी आईसक्रीम की लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और देश में कुल दूध उत्पादन का करीब 0.8 प्रतिशत भाग आईसक्रीम बनाने के लिए प्रयोग किया जा रहा है। इस हिमीकृत उत्पाद का उपयोग न केवल ग्रीष्म ऋतु तक ही सीमित रह गया है बल्कि वर्ष के अधिकांश समय इसको स्वादिष्ट व्यंजन के रूप में समारोह आदि में परोसा जाता है। आईसक्रीम में कम से कम 10 प्रतिशत दूध वसा, 3.5 प्रतिशत प्रोटीन तथा 36 प्रतिशत कुल दूध ठोस पदार्थ होने चाहिए। कानूनी रूप से स्वीकृत स्टेबलाईजर और एम्पलीफायर की कुल मात्रा 0.5 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। आईसक्रीम के विभिन्न रूप प्रचलित हैं जिनमें प्लेन, चॉकलेट, फ्रूट आईसक्रीम, नट आईसक्रीम, मिल्क आईसिस, फैंसी मोल्डीड, नोवल्टी तथा सोफ्ट (सोफ्टी) आईसक्रीम आदि प्रमुख हैं। इसी प्रकार सुगंधों की दृष्टि से वैनीला, चॉकलेट, स्ट्रॅाबैरी, पाईनएप्पल, बैनाना आदि आईसक्रीम भी अधिक लोकप्रिय हैं।

3. चीज़

चीज़ एक अत्यन्त पाचक, पौष्टिक तथा पोषण की दृष्टि से यह ऊर्जा, उच्च कोटि की प्रोटीन, कैल्शियम, फास्फोरस तथा विटामिनों का अच्छा स्रोत है। पश्चिमी देशों में चीज़ की हजारों किस्में प्रचलित हैं, परन्तु हमारे देश में चैड्डार चीज़ ही अधिक लोकप्रिय है। चैड्डार चीज़ में लगभग 25 प्रतिशत प्रोटीन होता है। यदि हम अपने प्रतिदिन के भोजन में चीज़ को शामिल करें तो यह भोजन के अन्य तत्वों के पाचन एवं अवशोषण को भी बढ़ा देता है क्योंकि परिपक्वन द्वारा चीज़ में विद्यमान पोषक तत्व ज्यादा सुलभ अवस्था में होते हैं जिनको हमारा पाचन तंत्र आसानी से पचा लेता है। यद्यपि महानगरों में चीज़ का व्यवसाय अभी प्रारम्भिक अवस्था में ही है तथापि महानगरों में इसकी मांग लगातार बढ़ रही है।

4. शिशु आहार

गाय तथा भैंस के दूध का पाचन एवं अवशोषण शिशु के शरीर में इतनी आसानी से नहीं हो पाता जितनी आसानी से मां के दूध का होता है। अतः गाय तथा भैंस के दूध की संरचना को इस प्रकार बदला जाए कि जब भी इसे शिशु आहार बनाया जाए तो वह आसानी से पच सके तथा शिशु के पोषण के लिए अधिक लाभकारी हो। विभिन्न प्रकार के शिशु आहार बनाने की तकनीक अब हमारे देश में भी विकसित की गई हैं जिसके द्वारा गाय तथा भैंस के दूध की संरचना को करीब-करीब मानव दूध जैसा ही बनाकर शिशु आहार के रूप में बदला जाता है। इसमें अतिरिक्त रूप से आवश्यकता अनुसार प्रोटीन, शर्करा तथा विटामिनों की मात्रा भी कृत्रिम रूप से बढ़ाई जाती है ताकि शिशु का उचित पालन-पोषण हो सके।

5. दुग्ध पेय

लस्सी का प्रचलन तो हमारे देश में प्राचीन काल से है, परन्तु आजकल दूध पर आधारित दूसरे पेयों का उत्पादन भी लोकप्रिय हो रहा है जिनमें सुगंधित लस्सी, एसिडोफिलस मिल्क, व्हे ड्रिन्क आदि प्रमुख हैं। एसिडोफिलस मिल्क में विशेष रूप से जीवाणु जो दूध में अम्लता पैदा करते हैं, कल्चर किये जाते हैं। यह दूध हमारे पाचन तंत्र और विशेष तौर पर आंतों में विद्यमान जीवाणुओं की संख्या पर विशेष प्रभाव डालकर हमें पेट की बीमारियों से मुक्ति दिलाता है। पनीर और छैना उद्योग में जो जलीय भाग व्हे के रूप में बचता है उसमें भी आवश्यकता अनुसार सिट्रिक एसिड और शक्कर मिलाकर एक पौष्टिक पेय प्राप्त किया जाता है जो पोषण की दृष्टि से अत्याधिक लाभदायक है।

दूध-व्यंजन बनाने की विधियां

बाजार में उपलब्ध दूध व्यंजनों की स्वच्छता को लेकर समय-समय पर सवाल उठाये जाते रहे हैं क्योंकि प्राय: हलवाई अपनी व्यावसायिक व्यस्तता के कारण स्वच्छता के मापदंडों को पूरा करने हेतु ध्यान नहीं दे पाते। दूसरा दूध व्यंजनों को हम अधिक समय तक सुरक्षित एवं स्वादिष्ट नहीं बनाए रख सकते। अगर गृहणियां इस विषय में रूचि लें तो थोड़े से प्रशिक्षण और अभ्यास द्वारा इन व्यंजनों को अपने रसोईघर में ही सम्पूर्ण शुद्धता और स्वच्छता के साथ तैयार कर सकती हैं। घर पर बनाये जाने वाले व्यंजन बाजार के मुकाबले सस्ते होने के साथ-साथ परिवार के सदस्यों की सुरूचि के अनुसार भी बनाए जा सकते हैं। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर गृहणियों के लिए कुछ लोकप्रिय दुग्ध व्यंजनों को बनाने की विधियां विस्तारपूर्वक इस अध्याय के अंतर्गत दी जा रही हैं।

1. गुलाब जामुन (खोया से)

सामग्री

खोआ	- 300 ग्राम
मैदा	- 20 ग्राम
सूजी	- 20 ग्राम
बेकिंग पाऊडर या मीठा सोडा	- 1/3 चम्मच
चीनी	- 1 किलोग्राम
घी	- तलने के लिए
पानी	- 1 लीटर

विधि

- चीनी को पानी में घोलें व उसे एक तार से कम चाशनी तक पकायें।
- मैदा, सूजी, बेकिंग पाऊडर को छलनी से अच्छी तरह छानकर खोए में मिलाएं और इसे धीरे-धीरे गूंथें।
- इस मिश्रण की गोलियां बनाकर इनको धीमी-धीमी आंच पर तलें।
- हल्के भूरे रंग की होने पर इन गोलियों को गर्म-गर्म चाशनी में डालें।
- इन्हें 10-12 घंटे चाशनी में डूबे रहने के बाद परोसिये।

2. गुलाबजामुन

सामग्री

मिल्क पाउडर	- 1 किलोग्राम
मैदा	- 300 ग्राम
सूजी	- 150 ग्राम
घी	- 250 ग्राम
बेकिंग पाऊडर या मीठा सोडा	- 15 ग्राम
चीनी	- 3 किलोग्राम
पानी	- 3.5 लीटर
दूध	- गूंथने के लिए
घी	- तलने के लिए

विधि

- मैदा, सूजी, बेकिंग पाऊडर या मीठा सोडा को अच्छी तरह मिलाकर, बारीक तार वाली छलनी से छान लें।
- पिघले हुए घी को मिल्क पाऊडर में अच्छी तरह मिलाकर इस मिश्रण को थाली में डालकर हल्के हाथ से दूध की कुछ मात्रा के साथ गूंथें।
- इस मिश्रण की गोलियां बनाकर इनको धीमी-धीमी आंच पर घी में तलें।
- हल्के लाल रंग का होने पर इन गोलियों को घी में से निकाल कर ठंडा होने के लिए रखें।
- चीनी और पानी मिलाकर एक तार से कम की चाशनी तैयार करें और ठंडी की हुई गुलाबजामुन की गोलियां इसमें डालकर करीब एक-दो मिनट तक उबाल लें तथा रातभर चाशनी में रखने के बाद परोसें।

3. रसगुल्ला

सामग्री

गाय का दूध	- 1 लीटर
सिट्रिक एसिड	- 2 ग्राम
चीनी	- 500 ग्राम
पानी	- 1 लीटर
केवड़ा	- दो बूंद

विधि

- गाय के दूध से नरम छैना बना लें और उसे अच्छी तरह से मसलें। जब वह एक दम मुलायम हो जाए तो उसकी गोलियां बनाएं।

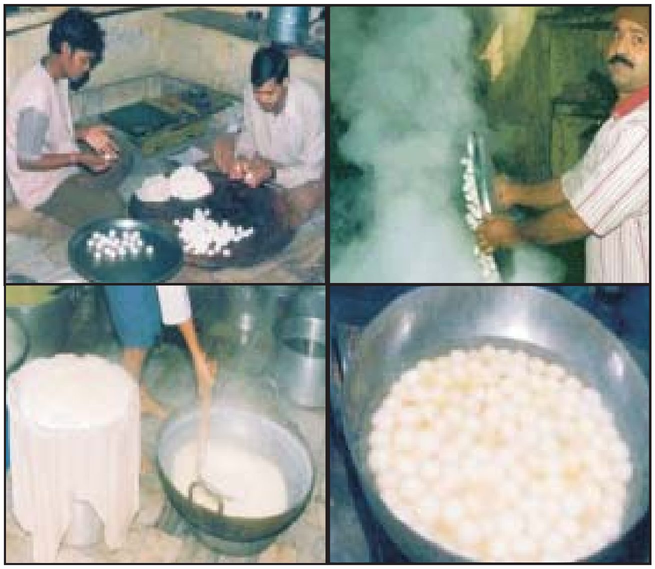

- पानी और चीनी का घोल बनाकर उसकी चाशनी बनाएं।
- जब चाशनी उबलना बंद कर दे तो उसमें छैने की गोलियां डाल दें और बर्तन को ऊपर से ढक दें। उबालते वक्त चाशनी का तापक्रम एक जैसा बनाए रखना जरूरी है तथा यह भी ध्यान रखें कि ज्यादा पानी उड़ने से चाशनी गाढ़ी न हो जाए। रसगुल्ले बनाने में यही दो बातें सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती हैं।
- इसे 10-15 मिनट तक उबालें और केवड़े की कुछ बूंदे डालें तथा ठण्डा होने पर फ्रिज में रखें।

4. चॉकलेट बर्फी

सामग्री

खोया	- 250 ग्राम
कोको पाऊडर	- 2 से 3 चम्मच
चीनी पिसी हुई	- 100 ग्राम
घी	- आधा चम्मच
पिस्ता	- इच्छानुसार

विधि

- खोए को मथने से हल्का रगड़ लीजिए ताकि खोए के दाने टूट जाएं।
- खोए को कड़ाही में डालकर चीनी मिला लें। कढ़ाई को तेज आंच पर रखें और पलटे से तेजी से चलाएं ताकि खोया जल न पाए।
- जब खोया कढ़ाही छोड़ने लगे तो कढ़ाही को आंच से नीचे उतार लें और खोए को दो भागों में बांटकर एक भाग में कोको पाऊडर अच्छी तरह मिला लें।
- एक थाली में घी लगाकर एक तह सफेद बर्फी की जमा लें तथा उसके ऊपर दूसरी तह कोको बर्फी की जमा दें। ठंडी होने पर इच्छानुसार टुकड़े काटें।

5. कोकोनट बर्फी

सामग्री

खोया	- 250 ग्राम
नारियल का बुरादा	- 35 ग्राम
चीनी पिसी हुई	- 125 ग्राम
पिस्ता	- इच्छानुसार

विधि

- खोए को कढ़ाही में डालकर मथने से हल्का रगड़ लिजिए ताकि खोए के दाने टूट जाएं।
- इसमें चीनी मिलाकर तेज आंच पर रखें। जब खोया कढ़ाही छोड़ने लगे तो कढ़ाही को आंच से नीचे उतार लें और उसमें नारियल का बुरादा मिला लें।
- एक ट्रे की तली में घी लगाकर बर्फी जमा दीजिए। पिस्ते को काटकर बर्फी पर लगा दें।
- ठंडा होने पर इच्छानुसार टुकड़े काटें।

6. कलाकंद

सामग्री

दूध	- 4 किलोग्राम
चीनी	- 250 ग्राम
सिट्रिक एसिड	- 2 ग्राम
छोटी इलायची	- 5-6

विधि

- दूध को कड़ाही में डालकर धुंआ रहित तेज आंच पर रखकर उबालें।
- थोड़े से पानी में सिट्रिक एसिड घोलकर उबलते हुए दूध में इस घोल के छींटे मारे तथा साथ-साथ दूध को चलाते भी रहें।
- जब दूध में बारीक दाना दिखाई देना आरम्भ हो जाए तो घोल के छींटे मारना बंद कर दें।
- अब इसे खोए की तरह गाढ़ा बना लें।

- जब कलाकंद अर्धठोस अवस्था में आ जाए तो उसमें चीनी डालकर पलटे से चलाएं। जब यह कढ़ाही छोड़ने लगे तो इसे आंच से नीचे उतार लें।
- एक थाली में घी लगाकर कलाकंद को जमने दें तथा इसके ऊपर छोटी इलायची के दाने पीसकर बुरक दें।
- रातभर रखकर सुबह मनपसन्द आकार में काटें।

7. पनीर की खीर

सामग्री

दूध	- 1 लीटर
पनीर	- 175 ग्राम
चीनी	- 75-100 ग्राम
छोटी इलायची	- 3-4

विधि

- पनीर को कद्दूकस कर लें।
- दूध को पतीले में डालकर उबाल लें।
- इसमें चीनी डाल कर घोलें।
- पांच मिनट तक दूध को उबालने के बाद इसमें कद्दूकस किया हुआ पनीर डाल दें।
- जब यह मिश्रण गाढ़ा होने के बाद आधा रह जाए तो इसमें इलायची व कटे हुए मेवे डालकर आंच से उतार लें।
- ठण्डा होने पर पनीर की खीर को परोसें।

8. रसमलाई

सामग्री

दूध	- दो किलो (भैंस का दूध) रबड़ी के लिए
	- डेढ़ किलो गाय का दूध छैना के लिए
इलायची,पिस्ता	- इच्छानुसार
सिट्रिक एसिड	- ढाई से तीन ग्राम
पानी	- 1.6 लीटर चाशनी के लिए
चीनी	- 150 ग्राम रबड़ी के लिए 400 ग्राम चाशनी के लिए

विधि

- रबड़ी तैयार करने के लिए पहले भैंस के दूध को कड़ाही में डालकर तेज आंच पर रखें और दूध को लगातार हिलातें रहें।
- जब दूध गाढ़ा होकर आधा रह जाए तो इसमें इलायची व कटा हुआ पिस्ता डालकर आंच से नीचे उतार लें और इसे ठंडा करें।
- गुनगुनी रबड़ी होने पर चीनी डालकर घोल लें। अब यह रबड़ी तैयार है।
- गाय के दूध का छैना बनाकर लटका दें। जब इसमें से पानी निकलना बंद हो जाए तो छैना को पानी में डालकर अच्छी तरह मसल लें और उसमें मैदा डालकर उसको अच्छी तरह मिला दें।
- इस मिश्रण की गोलियां बनाकर उनको चपटा आकार दे दें।
- एक कड़ाही में चीनी व पानी मिलाकर उबालें।
- छैना से बनाई चपटे आकार की टुकड़ियों को खौलती हुई चाशनी में डालकर 20-25 मिनट तक पकाएं। अब इन्हें चाशनी में से निकालकर रबड़ी में डाल दें। ठण्डा होने पर परोसें।

9. छैना मुर्की

सामग्री

पनीर	- 1 किलोग्राम
चीनी	- 1 किलोग्राम
पानी	- 500 मि.लीटर

विधि

- पनीर को बारीक टुकड़ों में काट लें।
- चीनी और पानी मिलाकर तीन तार की चाशनी बनाएं।
- इस चाशनी में पनीर के टुकड़े डालें तथा इसे 4-5 मिनट तक पकायें। पकाते हुए इसे पलटे से लगातार धीरे-धीरे चलातें रहें ताकि पनीर के टुकड़े टूटे नहीं।
- अब कढ़ाही को आंच से नीचे उतारकर पलटे से लगातार तब तक चलातें रहें जब तक कि चीनी सूख कर पनीर के टुकड़ों पर चढ़ ना जाए।

10. मटका कुल्फी

सामग्री

दूध	- 1 लीटर (भैंस का)
	- 1 लीटर (गाय का)
चीनी	- 130 ग्राम
छोटी इलायची	- 5-6
पिस्ता, बादाम, किशमिश	- इच्छानुसार
बर्फ	- 3 किलो
नमक (मोटा)	- 2 किलो
मटका (पुराना)	- एक
कुल्फी की डिबियां (एल्यूमीनियम की 100 मि.ली.)	- दस
एक इंच कटे हुए रबड के टुकड़े	- दस

विधि

- भैंस और गाय के दूध को मिलाकर गाढ़ा कर लें।
- जब यह दूध गाढ़ा होकर आधा हो जाए तो इलायची, किशमिश, कटा हुआ पिस्ता एवं बादाम डालकर आंच से नीचे उतार लें।
- जब यह मिश्रण गुनगुना हो जाए तो इसमें चीनी की सारी मात्रा मिला लें।
- अब इसे कुल्फी की डिब्बियों में ऊपर तक भरकर रबड़ के छल्ले लगाकर ढक्कन को कस कर बंद कर दें।
- एक पुराने मटके में बर्फ के टुकड़े और नमक डालें। अब इसमें साथ-साथ कुल्फी की डिब्बियां भी डाल दें और मटके को तेजी से गोलाई में हिलाएं। करीब 15-20 मिनट में कुल्फी तैयार हो जाएगी।

दूध का व्यावसायीकरण

देश में 1970 में आरम्भ किया गया 'ऑप्रेशन फ्लड' संख्या की दृष्टि से विश्व का सबसे बड़ा डेयरी विकास कार्यक्रम है। इस ऑप्रेशन के अन्तर्गत 5.5 मिलियन ग्रामीण परिवारों, 52000 ग्रामीण उत्पादक सहकारिताओं को देश के लगभग 250 जिलों में 159 शैडों के अन्तर्गत लाया गया है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत इसने 1990 तक गांव से दूध की खरीद का 18 मिलियन लीटर प्रतिदिन का अपना लक्ष्य पूरा कर लिया। डेयरी विकास के लिए 'टैक्नोलॉजी मिशन' का लक्ष्य सन् 2000 तक दूध का उत्पादन 70 मिलियन टन तथा प्रति व्यक्ति दूध उपलब्धता जो 1991-92 में 185 ग्राम. थी, को 2000 तक 196 ग्राम करना था, वह पूरा कर लिया गया था। वर्तमान समय में दूध का उत्पादन 80 मिलियन टन से अधिक एवं प्रति व्यक्ति प्रति दिन दूध उपलब्धता 237 ग्राम हो गई है। कृषि उत्पादों की वृद्धि में डेयरी उद्योग महत्वपूर्ण स्थान रखता है। बेरोजगारी का समाधान भी काफी हद तक डेयरी व्यवसाय कर रहा है। यदि दूध और दूध से बने पदार्थों को आधुनिक तकनीक द्वारा बनाया जाए और उत्तम तरीकों का उपयोग करके बिना गुणवत्ता को नुकसान पहुंचाए इसे सुरक्षित रखा जाए तथा उपभोक्ताओं तक सही हालत में उपलब्ध करवाया जाए तो इस योगदान को और भी बढ़ाया जा सकता है।

देश में डेयरी प्रौद्योगिकी अपनी उन्नत अवस्था में पहुंच रही है तथा इस दिशा में राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड, राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान तथा देश के विभिन्न कृषि विश्वविद्यालय अपना योगदान दे रहे हैं। देश के देसी दूध उत्पादों जैसे : खोया, पनीर, छैना, दही तथा श्रीखंड आदि की निर्माण प्रौद्योगिकी का मानकीकरण सुधरे तरीके अपनाकर किया गया है। अब ग्रामीण क्षेत्रों में लैक्टोपरआक्सीडेस/थायोसिनेट/ हाइड्रोजन-परऑक्साईड प्रणाली का प्रयोग करके कच्चे दूध को लम्बे समय तक बिना खराब हुए रखा जा सकता है। यह परम्परागत प्रशीतन प्रणाली इतनी मंहगी भी नहीं है। इस प्रणाली से दूध को बहुत कम लागत पर कमरे के तापमान पर 24 घंटों तक रखा जा सकता है। उपर्युक्त प्रणाली से उपचारित दूध से बिना किसी खराबी के एसिडोफिलस मिल्क, दही और गाढ़ा दूध तैयार किया जा सकता है। अच्छी क्वालिटी की दही तथा अन्य विकसित पदार्थ तैयार करने के लिए राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में एक राष्ट्रीय डेयरी कल्चर संकलन केन्द्र स्थापित किया गया है। यह देश में अपनी तरह की एकमात्र एजेंसी है जहां स्टार्टर कल्चर का रखरखाव करके उन्हें सरकारी तथा निजी डेयरियों, कृषि विश्वविद्यालयों तथा नेपाल, श्रीलंका व बंगलादेश जैसे देशों को सप्लाई किया जाता है। वानस्पतिक पनीर (चीज) बनाने में पशु रेनेट के स्थान पर सूक्ष्मजैविक रेनेट का इस्तेमाल करने, मानव दूध को बढ़ाने वाले कम्पोजिशन से युक्त ह्यूमनाईज्ड भैंस का दूध तैयार करने, विश्व खाद्य संगठन/खाद्य तथा कृषि संगठन के कोडेक्स एलीमेंटेरियस कमीशन द्वारा बढ़ते हुए

शिशुओं के लिए निर्धारित मानकों के आधार पर बच्चों के दूध का फार्मूला विकसित करने, लगातार घी बनाने के लिए क्षैतिज थिन फिल्म स्क्रैप्ड सर्फेस से हीट एक्सचेंजर का विकास करने, दूध से खोआ तथा क्रीम से घी बनाने के लिए क्रॉनिकल प्रोसेस का विकास करने और खोआ पर आधारित बर्फी, पेड़ा, गुलाब जामुन, कलाकंद, गुलाब जामुन मिक्स पाऊडर, जीवाणु रहित दूध, जीवाणु रहित क्रीम, जैसी मिठाइयों या दुग्ध उत्पाद बनाने की विधियों के यंत्रीकरण जैसे महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। आजकल दूध संसाधन की आधुनिक प्रौद्योगिकी जैसे अल्ट्रा हीट ट्रीटिड (यू.एच.टी.) दूध की पैकिंगों व झिल्ली प्रौद्योगिकी पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। दूध के टिकाऊपन को बढ़ाने में कम लागत की दृष्टि से यू.एच.टी. संसाधन प्रणाली लागू की जा चुकी है और यू.एच.टी. संयत्र सूरत, इंदौर, जयपुर और गुंटूर में पूरी तरह चालू हो गए हैं। दूध और दूध उत्पादों की बिक्री की पद्धति में भी कुछ परिवर्तन आए हैं। अब दूध को जिंस की तरह एक उत्पाद माना जाने लगा है। आजकल लोगों की पसंद, प्राथमिकता, आय और विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की दृष्टि से अलग-अलग श्रेणी का दूध जैसे संपूर्ण दूध, मानकीकृत दूध, टोन्ड दूध तथा डबल टोन्ड दूध बाजार में अलग-अलग जगहों पर, किराने की दुकान पर बिकने लगा है। संपूर्ण दूध में जहां पूर्ण वसा की मात्रा जो कानूनन 6 प्रतिशत है तथा वसा रहित कुल ठोस पदार्थों की मात्रा 9 प्रतिशत होती है वहीं मानकीकृत दूध में यह मात्रा क्रमश: 4.5 तथा 8.5 प्रतिशत होती है, जबकि टोन्ड दूध में 3 प्रतिशत तथा वसा रहित ठोस पदार्थों की मात्रा 8.5 प्रतिशत तथा डबल टोन्ड में वसा 1.5 तथा वसा रहित ठोस पदार्थों की मात्रा 9 प्रतिशत होती है।

दूध-व्यंजनों का व्यावसायीकरण

दूध के साथ-साथ 'दूध व्यंजन व्यवसाय' भी काफी महत्वपूर्ण है। इस व्यवसाय को अपनाकर कोई भी बेरोजगार व्यक्ति अपनी आजीविका आराम से चला सकता है। हरियाणा जैसे प्रांत में जहां प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता 688 ग्राम प्रतिदिन है, दूध के ये उत्पाद काफी लोकप्रिय हैं। राजधानी क्षेत्र दिल्ली, जो देश की जनसंख्या की दृष्टि से संघनित एवं आर्थिक दृष्टि से समृद्ध क्षेत्र है में दूध के व्यंजनों की भारी मांग है। कृषि विज्ञान केन्द्र, जींद तथा कैथल के सर्वेक्षण से प्राप्त कुछ उत्पादों के लागत एवं लाभांश के आंकड़े निम्नलिखित हैं :-

इस सर्वेक्षण से पता चला कि रसगुल्ले (लगभग 80 प्रतिशत) व गुलाबजामुन (लगभग 100 प्रतिशत) जैसे व्यंजन अपनी उत्पादन लागत से अत्यधिक शत्-प्रतिशत अधिक लाभांश देते हैं। इस असाधारण लाभ का मुख्य कारण इन पदार्थों में चीनी के रस का ज्यादा होना है जिनसे इनकी प्रतिशत उत्पादन मात्रा में बढ़ोतरी होना है। इसके विपरीत पनीर से प्राप्त प्रतिशत लाभ 21 के आस-पास रहा जोकि चीनी मिलाकर तैयार किये जाने वाले व्यंजनों की तुलना में काफी कम है। पनीर का प्रतिशत उत्पादन भी कम है क्योंकि पानी के रूप में कुल ठोस पदार्थ का पानी में घुलनशील भाग 'व्हे' के रूप में निष्कासित हो जाता है। अत: हम कह सकते हैं कि थोड़ी पूंजी लगाकर भी अगर परिश्रम और ईमानदारी से काम किया जाए तो दूध व्यंजन का व्यवसाय अपनाकर भी कोई बेरोजगार युवक अपनी अजीविका सुचारू रूप से चला सकता है। पशुपालक जो दूध बेचते हैं या इस व्यवसाय से जुड़े हैं उन्हें कई बार अचानक दूध बच जाने की संभावना हो सकती है।

क्र.स.	पदार्थ का नाम	मात्रा	कुल लागत (रू.)	औसत बिक्री (रू.)	लाभांश प्रतिशत (रू.)
1.	दही	एक कि.ग्राम	11.00	16.00	45.45
2.	पनीर	,,	66.00	80.00	21.21
3.	रसगुल्ला	,,	28.00	50.00	78.57
4.	गुलाबजामुन	,,	30.00	60.00	100.00
5.	बर्फी	,,	55.00	80.00	45.45
6.	कलाकंद	,,	40.00	70.00	75.00
7.	मिल्क केक	,,	51.00	75.00	47.05
8.	पेड़ा	,,	45.00	80.00	77.77

ऐसे अवसर पर यदि वह इस दूध से अपने घर पर कई प्रकार के व्यंजन बनाकर रोजमर्रा के त्यौहारों, पार्टी आदि में लगाकर काफी पैसे बचा सकते हैं। यदि व्यंजन अधिक मात्रा में हों तो बाजार में बेच सकते हैं। इससे उन्हें अधिक आय होगी तथा संरक्षण करने में भी कम जगह की जरूरत होगी तथा परेशानी भी नहीं होगी। यदि दूध-उत्पादक अपने सारे दूध को भी व्यंजन बनाकर बेचता है तो उन्हें दूध की तुलना में इनसे कई गुणा अधिक लाभ होगा। इसके लिए विभिन्न कृषि विश्वविद्यालयों एवं राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान द्वारा उत्तम तकनीक का विकास किया गया है। अतः कुछ विकसित व्यंजन बनाने की विधियों को अपनाकर पशुपालक अपने घर पर ही थोड़े परिश्रम व लागत से अपना लाभ कई गुणा बढ़ा सकते हैं। इसके लिए वह बाजार, होटलों व दुकानदारों से उनकी जरूरत तय कर सकते हैं या शादी, पार्टी व अन्य समारोहों आदि में अपने खाद्य पदार्थों को बेच सकते हैं। महिलाएं इन व्यंजनों को बना सकती हैं तथा बनाने में सहयोग घर पर ही रहकर दे सकती हैं। इन सब व्यंजनों को बनाने की विधि साधारण व सरल शब्दों में दी गई है जिसको समझने व बनाने में कोई मुश्किल नहीं होती। इसके अतिरिक्त कृषि विश्वविद्यालयों व डेयरी संस्थानों में समय-समय पर इन सभी व्यंजनों को बनाने के लिए पशुपालकों व महिलओं को निशुल्क प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके अलावा प्रशिक्षणार्थियों के अनुरोध पर कई अन्य सरकारी व गैर सरकारी संस्थाएं जैसे जिला ग्रामीण एजेंसी, कृषि विज्ञान केन्द्र, जिला औद्योगिक संस्थान आदि भी इस दिशा में कार्य कर रहे है। जिनसे आप संपर्क कर प्रशिक्षण ले सकते हैं। उनमें से अधिकांश स्थानों पर प्रशिक्षण पूरा होने के बाद प्रमाण-पत्र दिये जाते हैं। बैंकों से आर्थिक सहायता लेकर आप अपना व्यवसाय चलाकर आत्मनिर्भर बन सकते हैं।

डेयरी स्कीम एवं अभिलेख

जनसंख्या वृद्धि के कारण किसान की खेती से आय कम होती जा रही है तथा परिवार के सदस्यों को सारा साल काम भी नहीं मिलता। इसलिए डेयरी का धंधा भी व्यवसाय के रूप में करना जरूरी है। डेयरी फार्म शुरू करने से पहले यह जानना अति आवश्यक है कि उससे क्या आमदनी एवं व्यय होगा। एक सफल डेयरी फार्म चलाने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना अति आवश्यक है :

- डेयरी फार्म के लिए 1800 से 2500 किलोग्राम प्रति ब्यांत दूध देने वाली गाय या भैंस रखनी चाहिए।
- जहां तक हो सके दूसरे ब्यांत के पशु ही खरीदने चाहिएं।
- पांच से छह ब्यांत के बाद दूध वाले पशुओं को फार्म पर तैयार की गई बछडियों से ही बदलना चाहिए।
- दुधारू पशुओं का दूध उत्पादन काल 300 दिन से कम नहीं होना चाहिए।
- दुधारू पशुओं को सन्तुलित तथा पौष्टिक आहार खिलाना चाहिए।
- फार्म पर पैदा किये हुए चारे की कीमत 40 रूपये प्रति क्विंटल से अधिक नहीं होनी चाहिए।
- सूखे चारे की कीमत 80-100 रूपये प्रति क्विंटल होनी चाहिए।
- दाना मिश्रण की कीमत 700 रूपये प्रति क्विंटल से अधिक नहीं होनी चाहिए।
- एक हैक्टेयर जमीन पर 8-10 पशु रखे जा सकते हैं।
- छोटे फार्म की परिवार के सदस्य देखभाल कर सकते हैं तथा बड़े फार्म पर (10 पशु) एक मजदूर की जरूरत होती है।
- डेयरी फार्म शहर के पास पक्की सड़क पर स्थित होना चाहिए । बिजली, पानी का उचित प्रबन्ध होना चाहिए।
- डेयरी फार्म ऐसी जगह होना चाहिए जहां पर पशु चिकित्सक तथा प्रजनन की सुविधायें उपलब्ध हों।
- डेयरी फार्म पर दूध तथा फालतू पशुओं की बिक्री का ठीक प्रबन्ध होना चाहिए।
- मुँहखुर, गलघोटू के टीके समय पर लगवा लेने चाहिएं।

हरियाणा प्रांत विश्व प्रसिद्ध 'मुर्रा भैंसों' के लिए सारे भारत में प्रसिद्ध है। इसलिए दस मुर्रा भैंसों का आय व व्यय का ब्यौरा आगे दिया गया है।

अभिलेख

प्राय: पशुपालक अपने डेयरी फार्म का न तो बही खाता रखते हैं और न ही पशुओं के स्वास्थ्य, प्रजनन आदि के बारे में कोई लिखित अभिलेख रखते हैं जिस कारण पशुपालकों को डेयरी में होने वाले खर्च व आय का आकलन नहीं हो पाता और पशु सम्बन्धी लिखित जानकारी के अभाव में उनको प्रत्येक पशु के बारे में भी ज्ञान नहीं होता। फार्म अभिलेखों द्वारा पशुपालक अपने फार्म पर दूध उत्पादन के लिए किये गये खर्च का ज्ञान रख सकता है तथा अनावश्यक खर्चों को घटाकर शुद्ध लाभ में वृद्धि कर सकता है। पशु प्रजनन तथा स्वास्थ्य के अभिलेख उसको पशु प्रबन्धन की उचित जानकारी देते हैं जिससे वह अमादक या फिरावट वाली मादाओं का जल्दी उपचार करवाकर अपने पशुओं से प्रतिवर्ष बच्चा प्राप्त कर सकता है। दूध उत्पादन अभिलेख द्वारा वह प्रतिदिन दूध उत्पादन, प्रति पशु उत्पादन का पता लगा सकता है तथा कम उत्पादन वाले पशुओं को अपने फार्म से निकालकर सिर्फ अच्छे पशु रख सकता है। बच्चों के बारे में अभिलेख बनाकर वह उनकी वंशावली, शरीर भार में वृद्धि तथा प्रथम ब्यांत की उम्र का पता रख सकता है जो उस पशु की खासकर नर बच्चों की मूल्यवृद्धि में सहायक होता है।

दस मुर्रा भैंसों की डेयरी स्कीम

अ) स्थिर लागत शुरू में	(रूपयों में)
1. 10 मुर्रा भैंसों के खरीदने की लागत (25000 रूपये प्रति भैंस)	250000.00
2. डेयरी फार्म का मुक्त घर बनवाने का खर्च (कवर्ड स्थान 50 वर्गमीटर, खुला स्थान 100 वर्गमीटर, 250 रूपये व 175 रू. प्रति वर्ग मीटर की दर से)	30000.00
3. औजार व यन्त्रों का खर्च	20000.00
कुल लागत पूंजी	**300000.00**
ब) स्थिर लागत	
1. ऊपर लिखित पूंजी पर ब्याज (12 प्रतिशत वार्षिक दर से)	36000.00
2. मुक्त पशु घर पर घिसावट व टूट फूट (5 प्रतिशत वार्षिक दर से)	1500.00
3. औजार व यन्त्रों पर टूट-फूट (10 प्रतिशत वार्षिक दर से)	2000.00
4. बीमा किस्त (पशु मूल्य का 5 प्रतिशत वार्षिक)	12500.00
कुल पूंजी	**52000.00**
स) चालू लागत (चारा, दाना व मिश्रित)	
1. 10 भैंसों के लिए सूखे चारे की लागत (6 कि.ग्रा. प्रति भैंस प्रतिदिन एक साल के लिए 175 रू प्रति क्विंटल)	38325.00
2. 10 छोटे बच्चों के लिए 1 कि.ग्राम प्रति बच्चा प्रति दिन (9 महीने के लिए 175 रूपये प्रति क्विंटल)	4725.00
3. 10 भैंसों व 10 बच्चों के लिए पूरा साल एक हैक्टेयर से 1500 क्विंटल हरा चारा प्राप्त कर सकते हैं जिसका कुल खर्चा 40रु0/क्विंटल	60000.00
4. 10 भैंसों के लिए 4 कि.ग्राम राशन प्रति भैंस (प्रतिदिन 300 दिन दूध देने वाले दिनों में तथा 2 कि.ग्रा प्रति भैंस प्रतिदिन 65 दिन शुष्क अवस्था में 700 रू. प्रति क्विंटल की दर से)	93100.00
5. 10 बच्चों के लिए आधा किलोग्राम राशन प्रतिदिन प्रति बच्चा 270 दिनों के लिए 700 रू प्रति क्विंटल की दर से।	9450.00
6. एक मजदूर 1 वर्ष के लिए 2000 रू. प्रति महीना	24000.00
7. मिश्रित खर्चे, दवाईयां, बिजली तथा गर्भाधान आदि के लिए।	10000.00
कुल चालू लागत	**239600.00**
कुल लागत (ब+स) (रूपये)	**291600.00**
द) आमदनी :	
1. दूध की बिक्री 2500 लीटर दूध प्रति भैंस 300 दिनों में 15 रू/लीटर की दर से।	375000.00
2. कट्टे व कटडियों के मूल्य में वृद्धि	15000.00
3. गोबर की बिक्री (30 किलो गोबर/पशु तथा 5 किलो गोबर प्रति बच्चा /दिन 130 टन गोबर, 100 रूपये/टन)	13000.00
4. खाली बारदाना 233 बोरी (8 रूपये/बोरी)	1865.00
कुल आय	**404865.00**
कुल लाभ	**113265.00**
शुद्ध लाभ प्रति भैंस	**11326.00**

Publications of Directorate of Extension Education, CCSHAU, Hisar

1. Herbicide Resistant *Phalaris minor* in Wheat – A Sustainability Issue
2. Major Weeds of Rice-Wheat Cropping System
3. धान-गेहूँ फसल-चक्र में समन्वित पोषक तत्व प्रबन्धन : वर्मीतकनीक
4. फसलों में खरपतवार नियंत्रण
5. भूँईफोड़/मरगोजा (आरोबेंकी इजिप्टियाका पर्स.) की तिलहनी तोरिया में ग्रस्तता एवं प्रबंध हेतु विकल्प
6. Broomrape (*Orobanche aegyptiaca* Pers.) Infestation in Oilseed Rapes and Management Options
7. Long-term Response of Zero-Tillage – Soil Fungi, Nematodes & Diseases of Rice-Wheat System
8. IPM Issues in Zero-Tillage System in Rice-Wheat Cropping Sequence
9. Zero Tillage – The Voice of Farmers
10. कृषि में विविधीकरण - खुम्बी उत्पादन का सफल प्रयास
11. Animal Production and Health : Frequently Asked Questions
12. Project Workshop Proceedings on Accelerating the Adoption of Resource Conservation Technologies in Rice-Wheat Systems of the Indo-Gangetic Plains, June 1-2, 2005
13. आंवला उत्पादन एवं परिरक्षण
14. Addressing Sustainablility Issues of Rice-Wheat Cropping System
15. ग्रामीण उत्थान में डेयरी का महत्त्व
16. ब्रायलर पालन
17. मधुमक्खी पालन - लाभदायक व्यवसाय
18. बेर - उत्पादन व परिरक्षण